सुकुमार राय

चुनिन्दा कहानियाँ

H
8.5 R 211 G

H
028·5
R 211 G

सुकुमार राय

चुनिन्दा कहानियाँ

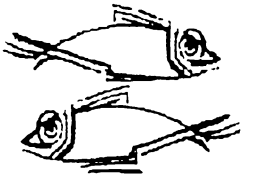

हिन्दी अनुवाद

अमर गोस्वामी

आवरण एवं रेखांकन

देवाशीष देव

साहित्य अकादेमी

Sukumar ... ahaniyan : Hindi translation by Amar Goswami
of Sukumar Ray's selected stories in Bengali for children, Sahitya Akademi,
New Delhi (2004) Rs. 30.00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 2002 ई.
पुनर्मुद्रण : 2003, 2004

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014

संट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आम्बेडकर वीथी, बंगलौर

चेन्नई कार्यालय

सीआईटी कैम्पस, टी.टी.टी.आई. पोस्ट, तारामणि, चेन्नई 600 ...

ISBN 81-260-1415-6

मूल्य : तीस रुपये

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

Library IIAS, Shimla
H 028.5 R 211 G
00115993

Indian Institute of Advanced Study
115993
17.11.04
SHIMLA

H
028.5
R 211 G

कहानी-क्रम

	प्रकाशकीय	7
1.	नन्दलाल का दुर्भाग्य	9
2.	यतिन की चप्पल	13
3.	डिटेक्टिव	18
4.	यज्ञदास के मामा	22
5.	पेटू	25
6.	एक साल का राजा	29
7.	मेंढक राजा	32
8.	बुद्धिमान शिष्य	37
9.	मूर्ख बुढ़िया	40
10.	गुड़िया की दावत	43
11.	छाते का मालिक	46
12.	दान का हिसाब	50
13.	पगला दासू	55
14.	सर्वज्ञ	60
15.	भोलानाथ की सरदारी	64
16.	व्योमकेश का माँझा	68
17.	डाकू का भ्रम	73
18.	राजा की बीमारी	75

प्रकाशकीय

बाङ्ला बाल एवं किशोर साहित्य में रायचौधुरी परिवार के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उपेन्द्र किशोर रायचौधुरी, सुकुमार राय तथा सत्यजीत राय—ये तीनों ऐसे युगान्तरकारी नाम हैं—जिन्होंने तीन पीढ़ियों से लगातार बच्चों के लिए बाङ्ला में लेखन कार्य को अपनी समस्त व्यस्तताओं के बावजूद प्राथमिकता दी।

सुकुमार राय बेहद प्रयोगशील लेखक थे। उन्होंने विदेश जाकर न सिर्फ़ मुद्रण कला में विशेषता प्राप्त की थी बल्कि समय की माँग को समझते हुए अपने पारिवारिक कारोबार में भी आधुनिक यन्त्रों एवं तकनीक का उपयोग किया। साहित्य और व्यवसाय दोनों में ही सुकुमार राय ने अपनी अल्पायु के बावजूद उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की थी।

अपने लेखन द्वारा उपेन्द्र किशोर रायचौधुरी को *गुपी गाइन बाघा बाइन* उपन्यास से जैसी प्रसिद्धि मिली, उससे कहीं अधिक प्रसिद्धि सुकुमार राय को अपनी बाल-कविताओं के संकलन *आबोल ताबोल* से प्राप्त हुई। इन कविताओं में हास्यपूर्ण स्थितियों और अजीबोग़रीब कल्पनाओं का बड़ा अनोखा संचार रचा गया है, जिसे बच्चों की दुनिया ने आज तक सँभाल कर रखा है। बंगाल में सार्वजनिक समारोहों में कविता-पाठ या कविता आवृत्ति के समारोह बहुत आम हैं। ऐसे समारोहों और कार्यक्रमों में *आबोल ताबोल* की कविताओं का पाठ करके आज तक न जाने कितने बच्चे पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। आज भी असंख्य बुज़ुर्गों को अपना बचपन इन कविताओं के कारण याद है।

सुकुमार राय ने बाल-साहित्य की हर विधा में लिखा—सिर्फ़ कविताएँ ही नहीं, बल्कि नाटक, कहानियाँ, ज्ञान-विज्ञान, पटकथा-लेखन—इन सबमें रोचकता और मौलिकता बनाये रखते हुए उन्होंने अपने नन्हे पाठकों को परम्परागत रूपकथाओं के डरावने, अविश्वसनीय माहौल और भूत कथाओं के आतंक से मुक्त किया।

सुकुमार राय ने अपनी रचनाओं, विशेषकर कहानियों में, बच्चों के मनोभावों और उनकी आकांक्षाओं को समझने की कोशिश की। उनकी बाल-कहानियाँ उस समय की दृष्टि से काफ़ी मनोवैज्ञानिक और बदलते वक़्त की कहानियाँ हैं, जिनमें तथाकथित नैतिकता का भारी-भरकम लबादा नहीं है। उनकी कथाशैली में गम्भीर बातें इस तरह गुम्फित रहती हैं कि वे सहज ही ग्राह्य

हो जाती हैं। इस दृष्टि से उनकी एकाधिक कहानियों 'जतीन की चप्पल', 'बुद्धिमान शिष्य', 'गुड़िया की दावत', 'एक साल का राजा', 'राजा की बीमारी', 'व्योमकेश का माँझा' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन कहानियों में बड़े मनोरंजक ढंग से अपनी चीज़ों की साज-सँभाल, नक़ल में भी अकल, परहित, वैज्ञानिक दृष्टि, संवेदनशीलता आदि मूल्यों के बारे में बताया गया है।

व्यावहारिक गणित पर आधारित सुकुमार राय की एक उल्लेखनीय कहानी है—'दान का हिसाब'। रूपकथात्मक शैली में लिखी यह कहानी बड़े मज़े से गणित से जुड़े सवाल के हल तक ले जाती है। 'नन्दलाल का दुर्भाग्य', 'पगला दासू', 'सर्वज्ञ', भोलानाथ की सरदारी', 'पेटू', 'डिटेक्टिव', 'यज्ञदास के मामा' आदि कहानियों में छात्र जीवन में की जानेवाली शरारतों के साथ छात्रों की आपसी प्रतिद्वन्द्विता, डींग हाँकने और झूठ बोलने की प्रवृत्ति, अनावश्यक कौतूहल और लोभ के दुष्परिणाम को रोचक ढंग से दर्शाया गया है। सुकुमार राय की व्यंग्य शैली इन कहानियों के पाठकों को लोट-पोट कर देती है। इस शैली में लिखी कहानी 'डाकू का भ्रम' को पढ़ने का मज़ा ही निराला है। रूपकथा की शैली में लिखी गयी 'मेंढक राजा' और 'मूर्ख बुढ़िया' कहानियाँ भी हँसी-हँसी में समझदारी की ओर इंगित करती हैं। ये कहानियाँ एक युग पहले लिखी जाने के बावजूद पुरानी नहीं, बल्कि आज के पाठकों के लिए लिखी गयीं और एकदम नयी-सी लगती हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कहानियों के पीछे चयन की दृष्टि यही रही है कि पाठक सुकुमार राय की विविधतापूर्ण और अलग-अलग रंग और परिवेश की कहानियों के साथ उनकी शैलीगत विशेषता और विषय-वस्तु की रोचक प्रस्तुति का आनन्द उठा सकें। आशा है, सुकुमार राय के अभिनव कथा-संसार की यह यात्रा न केवल रोचक, बल्कि आनन्ददायक होगी।

नन्दलाल का दुर्भाग्य

नन्दलाल बहुत ग़ुस्से में था। गणित की परीक्षा में मास्टर साहब ने उसे बहुत बड़ा अण्डा दिया था। उसने एकदम ठीक लिखा था, ऐसी बात नहीं, मगर इस तरह अण्डा देना क्या उचित था? चाहे जैसा भी हो आख़िर उसने पूरी कॉपी भर दी थी। उसके परिश्रम का क्या कोई मूल्य नहीं था? यह जो तीन अंकों का सवाल था, उसे तो उसने लगभग ठीक ही किया था, सिर्फ़ हिसाब में थोड़ी ग़लती से उत्तर नहीं मिल पाया था। और यह जो दशमलव का सवाल था, उसे गुणा करने के बजाय उसने भाग दे दिया था, क्या सिर्फ़ इतनी-सी बात के लिए वह एक भी नम्बर का अधिकारी नहीं था? उस पर यह अन्याय कि मास्टर साहब ने यह बात कक्षा के लड़कों को भी बता दी। क्यों? जब एक बार हरिदास को अण्डा मिला था, तब तो यह बात सबको नहीं बताई गयी थी।

उसे इतिहास में सौ में पच्चीस मिले थे, क्या यह बड़ी बात नहीं थी? वह सिर्फ़ गणित में कमज़ोर था, बस! क्या इतनी-सी बात से ही उसे शर्मिन्दा होना चाहिए? हर कोई हर विषय में अच्छा हो इसका क्या अर्थ? ख़ुद नेपोलियन बचपन में व्याकरण में अनाड़ी थे, तब ठीक था? मगर उसके ऐसे तर्कों से उसके साथी ज़रा भी प्रभावित नहीं हुए, बल्कि अध्यापकों के सामने इसे कहने पर उन पर भी उसके तर्कों का कोई असर हुआ हो, ऐसा नहीं लगा। तब नन्दलाल ने कहा कि उसका भाग्य ही ख़राब है, ऐसा उसके साथ हमेशा ही होता रहता है।

उस बार जब छुट्टियों के पहले उसके मोहल्ले में चेचक का प्रकोप हुआ था, तब घर के सभी ने, उसकी चपेट में आकर, बड़े मज़े से स्कूल का नागा कर दिया, सिर्फ़ बेचारे नन्दलाल को ही प्रतिदिन नियम से स्कूल में हाज़िरी लगानी पड़ी थी। इसके बाद स्कूल में जैसे ही छुट्टियाँ शुरू हुईं बस तभी उसे बुख़ार और चेचक ने चाँप लिया। उसकी आधी छुट्टियों का सत्यानाश हो गया। उस बार जब वह अपने मामा के यहाँ गया था, उसके ममेरे भाई घर में नहीं थे, वहाँ न जाने कहाँ के एक बददिमाग़ मौसाजी थे, जो उठते-बैठते डाँट-डपट करने के अलावा कुछ नहीं जानते थे। इसके अलावा उस बार इतनी बारिश हुई थी कि नन्दलाल ढंग से बाहर खेल ही नहीं पाया, न कहीं घूम पाया।

इसीलिए अगले साल जब घर के सभी लोग मामा के यहाँ गये तो वह नहीं गया। उस बार

उसने सुना कि वहाँ बड़ा भारी मेला लगा था, किसी राजा के लाव-लश्कर के साथ पच्चीस हाथी आये थे और चकित करनेवाली आतिशबाज़ी हुई थी। नन्दलाल का छोटा भाई जब बार-बार बड़े उत्साह से उन्हीं सबका वर्णन करने लगा तो नन्दलाल ने उसे थप्पड़ मारकर कहा, "चुप, ज़्यादा बकबक मत कर!" उसे बार-बार यही लग रहा था कि उस बार वह मामा के यहाँ जाकर ठगा गया था, इस बार न जाकर ठगा गया। उसके जैसा दुर्भाग्य और किसका होगा।

स्कूल में भी ठीक ऐसा ही होता था। गणित में वह कमज़ोर था, मगर उसी विषय में एकाधिक पुरस्कार दिये जाते थे। इतिहास और भूगोल उसे कण्ठस्थ रहता था, लेकिन इन विषयों में एक भी पुरस्कार नहीं था। संस्कृत में भी वह निहायत कच्चा नहीं था, धातु-विभक्ति-प्रत्यय वह फटाफट रट लेता था, कोशिश करने पर पाठ्य-पुस्तक और अर्थ-पुस्तिका को भी क्या घोंट नहीं सकता? कक्षा में खुदीराम को थोड़ी-बहुत संस्कृत आती थी, लेकिन वह भी कितनी? अगर नन्दलाल चाहे तो क्या उसे हरा नहीं सकता? नन्द ने मन-ही-मन ठान लिया कि इस बार वह खुदीराम को देख लेगा। उस छोकरे को इस वर्ष संस्कृत में पुरस्कार पाकर बड़ा घमण्ड हो गया है, गणित में अण्डा पाने के कारण वह मुझपर व्यंग्य करने आया था। ठीक है इस बार देखा जाएगा।

नन्दलाल ने किसी को बताए बिना उसी दिन से घर में जमकर संस्कृत की पढ़ाई शुरू कर दी। सुबह उठते ही वह 'हसति हसतः हसन्ति' से आरम्भ करता, रात में वह 'अस्ति गोदावरी तीरे विशाल शाल्मली तरु' ऊँघते हुए भी घोंटता रहता। कक्षा के लड़कों को उसकी इस साधना के बारे में कुछ भी पता नहीं था। पण्डितजी जब कक्षा में प्रश्न पूछते, तब वह कभी-कभी उत्तर जानते हुए भी मौन रहकर अपना सिर खुजलाता रहता, यहाँ तक कि कभी जानबूझकर ग़लत उत्तर दे देता था, जिससे कि खुदीराम उसकी पढ़ाई की बात जानकर और ज़्यादा मेहनत न करने लगे। उसके ग़लत उत्तरों पर खुदीराम बीच-बीच में उसका मज़ाक़ उड़ाता, मगर नन्दलाल कोई जवाब नहीं देता था, बल्कि खुदीराम के कभी-कभार ग़लत जवाब देने पर वह मन-ही-मन हँसता और सोचता, परीक्षा में ऐसी भूलें करने पर इस बार संस्कृत का पुरस्कार उसके हाथ से निकलना तय है।

उधर इतिहास की कक्षा में नन्दलाल का ध्यान कम रहने लगा। इतिहास और भूगोल में थोड़ा बहुत पढ़ने से ही वह पास हो जाएगा, इस बात से नन्दलाल आश्वस्त था। उसका सारा ध्यान संस्कृत की पढ़ाई पर था—अर्थात् संस्कृत के पुरस्कार पर। एक दिन मास्टर साहब ने कहा, "क्यों नन्दलाल, आजकल घर में क्या ज़रा भी नहीं पढ़ते? हर विषय में तुम्हारी इस दुर्दशा का मतलब क्या है?" नन्दलाल यह कहते-कहते रुक गया, "मैं संस्कृत पढ़ता हूँ।" उसने अपने को सँभालते हुए कहा, "जी संस्कृत—नहीं संस्कृत नहीं," यह बात मुँह से निकलते ही वह घबरा गया। खुदीराम ने झट से कहा, "हाँ, संस्कृत तो इसे बिल्कुल नहीं आती।" यह सुनकर पूरी कक्षा हँसने

लगी। नन्द थोड़ा असहज ज़रूर हुआ, लेकिन उसकी यह बात सोचकर जान में जान आयी कि भाग्य से उसके संस्कृत अध्ययन की बात किसी को पता नहीं चली।

देखते-देखते पूरा वर्ष बीत गया, परीक्षा सिर पर आ गयी। सभी अपनी पढ़ाई, परीक्षा और पुरस्कार की चर्चा कर रहे थे। तभी किसी ने उससे पूछा, "क्यों नन्द, इस बार किस विषय में पुरस्कार ले रहे हो?" खुदीराम ने गर्दन हिलाकर नन्द की नक़ल करते हुए कहा, "जी संस्कृत! नहीं, संस्कृत नहीं।" सभी हँस पड़े। नन्द भी ख़ुद बड़े उत्साह से उनकी हँसी में शामिल हो गया। मन-ही-मन उसने सोचा, 'दोस्त, तुम्हारे चेहरे पर यह हँसी अब ज़्यादा दिन नहीं रहनेवाली।'

यथासमय परीक्षा शुरू हुई। यथासमय समाप्त भी हुई। परीक्षाफल जानने के लिए सभी बेहद उत्सुक थे। नन्द भी रोज़ जाकर नोटिस बोर्ड देख आता था कि संस्कृत पुरस्कार के लिए उसके नाम की कोई सूचना है कि नहीं। इसके बाद एक दिन हेडमास्टर साहब काग़ज़ों का एक पुलिन्दा लेकर उसकी कक्षा में आये। आते ही उन्होंने बड़ी गम्भीरता से कहा, "इस बार एक-दो नये पुरस्कार दिये जा रहे हैं और दूसरे विषयों में भी कुछ परिवर्तन हुए हैं।" यह कहने के बाद वे पुरस्कारों के नतीजे पढ़ने लगे। पता चला कि इतिहास विषय के लिए किसी ने चाँदी का एक मेडल दिया था। खुदीराम इतिहास में प्रथम आया था, इस बार यह मेडल उसे मिलेगा। संस्कृत में नन्द प्रथम आया था। खुदीराम द्वितीय। मगर उस बार संस्कृत में कोई पुरस्कार नहीं दिया गया था।

नन्द का चेहरा उस वक़्त देखने लायक़ था। उसका मन कर रहा था कि वह दौड़कर खुदीराम को दो-चार घूँसे जड़ दे। यह किसे पता था कि इस बार इतिहास के लिए पुरस्कार दिया जाएगा, मगर संस्कृत के लिए नहीं। इतिहास में मेडल तो उसे अनायास ही मिल सकता था। मगर उसकी इस तकलीफ़ को किसी ने नहीं समझा—सभी कहने लगे, "बिल्ली के भाग्य में छींका टूटा है। बिना पढ़े ही नन्दलाल को नम्बर मिल गये।" नन्द ने गहरी साँस लेकर कहा, "मेरा दुर्भाग्य!"

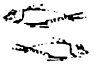

यतिन की चप्पल

यतिन के लिए नयी चप्पलें ख़रीदकर ले आने के बाद उसके पिता ने कहा, "इस बार अगर पहले की तरह इन्हें नष्ट किया तो फिर फटी चप्पलें ही पहननीं होंगी।"

यतिन को हर महीने एक नयी चप्पल की ज़रूरत पड़ती थी। उसकी धोती भी दो दिन बीतते-न-बीतते ही फट जाती थी। वह किसी भी चीज़ को ठीक से सँभालकर नहीं रख पाता था। उसकी सभी किताबों की ज़िल्दें फटी हुई थीं, कोई मुड़ी-तुड़ी थी, स्लेट में भी ऊपर से नीचे तक दरार थी। स्लेट की पेन्सिलें भी हमेशा उसके हाथों से गिरती रहती थीं, जिससे सभी के छोटे-छोटे टुकड़े हो गये थे। उसकी एक और बुरी आदत थी कि वह पेन्सिलों के पिछले हिस्से को चबाता रहता था। चबाते रहने के कारण पेन्सिल की लकड़ी बादाम के छिलके जैसी लगती थी। इसे देखकर एक दिन मास्टर साहब ने पूछा था, "तुम्हें घर में खाने के लिए भात नहीं मिलता?"

नयी चप्पल पहनकर यतिन पहले दिन तो फट जाने के डर से ख़ूब सावधान रहा। सीढ़ियों से धीरे-धीरे उतरता था, चौखट लाँघते समय कहीं ठोकर न लग जाए, इस भय से सतर्क रहता था। लेकिन बस इतना ही। दो दिन बाद फिर वह अपने पुराने रूप में लौट आता। चप्पल का मोह छोड़कर तेज़ी से सीढ़ियाँ उतरने, आते-जाते हुए दिन में दस बार चौखट से टकराने का सिलसिला शुरू हो गया। फलस्वरूप एक महीना बीतते-न-बीतते चप्पल के एक तरफ़ का हिस्सा थोड़ा खुल गया। माँ बोलीं, "अरे ज़रा मोची बुलवाकर इसकी सिलाई करवा ले, नहीं तो यह एकदम टूट जाएगी।" लेकिन मोची बुलाने की बात टलती रही। चप्पल का मुँह और खुलता गया।

मगर यतिन एक चीज़ का बहुत ध्यान रखता था। वह थी उसकी पतंग। जो पतंग उसे पसन्द आ जाती, उसे जोड़-जाड़कर जब तक सम्भव होता उसे टिकाए रखता। खेलने का उसका अधिकांश समय पलंग उड़ाने में ही बीतता। इस आदत के कारण न जाने कितनी बार उसे डाँट भी सुननी पड़ती। पतंग फट जाने पर वह रसोईघर में जाकर लेई के लिए उत्पात मचाने लगता। पतंग की दुम लगाने या डोर काटने के लिए कैंची की ज़रूरत पड़ने पर वह माँ की सिलाई का डिब्बा खँगाल डालता। पतंग उड़ाना शुरू करने पर फिर उसे खाने-पीने का भी होश नहीं रहता था। पेड़ पर चढ़ते वक़्त उसकी नयी धोती काफ़ी फट गयी थी। किताब रखकर चप्पल पहनते समय उसने देखा कि

चप्पल इतनी फट गयी थी कि पहनना मुश्किल था। लेकिन सीढ़ियाँ उतरते समय उसे यह बात याद नहीं रही, वह दो-तीन सीढ़ियाँ लाँघते हुए उतरने लगा। आख़िरकार चप्पल का खुला हुआ मुँह इतना ज़्यादा खुल गया कि वह सारे दाँत निकालकर चिढ़ाने लगी। वह जैसे ही आख़िरी तीन सीढ़ियाँ लाँघते हुए कूदा, वैसे ही उसके पैरों के नीचे से ज़मीन सट से खिसक गयी और टूटी हुई चप्पल उसे बड़ी तेज़ी से शून्य में न जाने कहाँ ले भागी, जिसका पता-ठिकाना नहीं था।

भागते-भागते-भागते-भागते चप्पलें जब थमीं, तब यतिन ने देखा कि वह किसी अनजाने देश में पहुँच गया था। वहाँ पर चारों तरफ़ अनेक मोची बैठे हुए थे। वे सब यतिन को देखकर उसके पास चले आये। इसके बाद उसके पैरों से फटे चप्पलों को निकालकर बड़े यत्न से झाड़ने लगे। उनमें एक जो सरदार जैसा था, उसने यतिन से कहा, "तुम तो बड़े दुष्ट लगते हो। इन चप्पलों का क्या हाल कर दिया? ज़रा देखो तो, कुछ और होता तो बेचारों के प्राण ही निकल गये होते।"

यतिन का साहस तब तक थोड़ा लौट आया था। उसने कहा, "जूते-चप्पलों में भी जान होती है क्या?" मोचियों ने कहा, "और नहीं तो क्या? तुम लोग शायद समझते होगे कि जब पैर में जूते पहनकर ज़ोर से भागते हो, तब उन्हें दर्द नहीं होता। बहुत दर्द होता है। दर्द होने के कारण ही तो वे चर्र-चर्र की आवाज़ करते हैं। जब तुम पैरों में चप्पलें पहनकर तेज़ी से सीढ़ियों पर चढ़-उतर रहे थे और तुम्हारे पैरों के बोझ से एक चप्पल की बग़ल का हिस्सा फट गया था, तब क्या उसे दर्द नहीं हुआ था? बहुत दर्द हुआ था। इसीलिए यह तुम्हें हमारे पास ले आयी है। देशभर के सभी लड़कों की चीज़ों का दायित्व हम पर है। चीज़ों को ठीक से न सँभालने के लिए हम लोग उन्हें सज़ा देते हैं।"

मोची ने यतिन के हाथ में टूटी चप्पल देकर कहा, "लो, अब इसे सिलो।" यतिन ने ग़ुस्से में कहा, "मैं जूते नहीं सिलता। यह काम मोची करते हैं।" मोची ने हँसते हुए कहा, "यह तुम्हारा देश नहीं है कि इनकार करने से काम चल जाएगा। इस सुए-तारो को लो और सिलाई करो।" यतिन का ग़ुस्सा तब तक कुछ कम हो गया था। उसे डर भी लगने लगा था। उसने कहा, "मुझे जूते सिलने नहीं आते।" मोची ने कहा, "मैं बताए देता हूँ, मगर सिलना तो तुम्हीं को पड़ेगा।"

यतिन डर के मारे चप्पल सिलने बैठ गया। उसके हाथ में सुआ चुभ गया, गर्दन झुकाकर बैठने से गर्दन में दर्द होने लगा। बड़े कष्ट से वह दिनभर में सिर्फ़ एक चप्पल ही सिल पाया। तब उसने मोची से कहा, "अब दूसरी चप्पल कल सिलूँगा। इस वक़्त भूख लगी है।" मोची ने कहा, "यह क्या! काम पूरा न करने पर न तुम्हें खाना मिलेगा, न तुम्हें सोने दिया जाएगा। एक चप्पल अभी भी सिलनी बाक़ी है। इसके बाद तुम्हें ढंग से चलना सीखना पड़ेगा, जिससे तुम और किसी जूते-चप्पल पर अत्याचार न कर सको। इसके बाद तुम्हें दर्जी के पास जाकर अपनी फटी धोती भी सिलनी पड़ेगी। इसके बाद देखा जाएगा कि तुमने अब तक और क्या-क्या चीज़ें बर्बाद की हैं।"

यतिन की आँखों में आँसू उमड़ आये। वह रोता हुआ किसी तरह अपनी दूसरी चप्पल

सिलने लगा। सौभाग्य से वह ज़्यादा नहीं टूटी थी। उसके बाद वे मोची उसे एक पाँच मंज़िले मकान के सामने ले गये। उस मकान की सीढ़ी नीचे से सीधे पाँचवीं मंज़िल तक चली गयी थी। उन लोगों ने यतिन को सीढ़ी के नीचे खड़ा करके कहा, "जाओ, एकदम सीधे पाँचवीं मंज़िल तक चढ़ो, फिर नीचे उतरो। इतमीनान से एक-एक सीढ़ी पर चढ़ना, फिर इसी तरह धीरे-धीरे उतरना।"

यतिन पाँचवीं मंज़िल तक सीढ़ियाँ नापता हुआ पहुँचा, फिर वहाँ से उतरा। नीचे आने पर मोचियों ने कहा, "ठीक नहीं हुआ। तुम तीन बार दो-दो सीढ़ी एक साथ चढ़ गये थे, पाँच बार कूदे भी थे, दो बार तीन सीढ़ियों पर एक साथ छलाँग लगाई थी।...फिर से चढ़ो। याद रहे तुम्हें न कहीं उछलना है, न एक भी सीढ़ी लाँघनी है।" इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने से बेचारे यतिन के पैर दुखने लगे थे। वह इस बार धीरे-धीरे ऊपर चढ़ा, धीरे-धीरे ऊपर से नीचे उतरा। उन्होंने कहा, "हाँ, इस बार ठीक हुआ है। अब दर्जी के पास चलो।"

यह कहकर वे उसे एक दूसरे मैदान में ले गये। वहाँ सिर्फ़ दर्जी ही थे, जो बैठे-बैठे कपड़े सिल रहे थे। यतिन को देखते ही उन्होंने पूछा, "तुमने क्या फाड़ डाला?" मोचियों ने कहा, "देखो, इसने अपनी नयी धोती कितनी बुरी तरह फाड़ी है।" सभी दर्जी सिर हिलाकर बोले, "बड़ा अन्याय है। बड़ा अन्याय है। इसे जल्दी से सिलो।" यतिन की अब इनकार करने की हिम्मत नहीं हुई। वह सुई-धागा लेकर फटी धोती सिलने बैठ गया। उसने अभी दो फन्दे डाले ही थे कि दर्जी चिल्लाने लगे, "इसे सिलाई कहते हैं? खोलो, खोलो।" वह बेचारा जितनी बार सिलता, उतनी बार वे कहते, "खोलो...खोलो!"

आख़िरकार उसने रोते हुए कहा, "मुझे बहुत भूख लगी है। एक बार घर पहुँचा दो, मैं फिर न कभी अपने कपड़े फाड़ूँगा, न अपना छाता।"

यह सुनकर दर्जी हँसते हुए बोले, "भूख लगी है? तो तुम्हारे खाने लायक़ चीज़ें तो हमारे पास बहुत हैं।" यह कहकर वे अपने कपड़ों में निशान लगानेवाली ढेर सारी पेन्सिलें ले आये। "तुम्हें तो पेन्सिल चबाना अच्छा लगता है। लो, इन्हें चबाकर भूख मिटाओ। हमारे पास और कुछ नहीं है।"

यह कहकर वे फिर से अपने काम में लग गये। थका-माँदा यतिन रोते-रोते ज़मीन पर लेट गया। तभी आसमान में सन्-सन् करके न जाने कैसी आवाज़ आयी और यतिन ने जिस पतंग को बड़े शौक़ से निप्पियाँ लगाकर दुरुस्त किया था वह आसमान में गोता लगाकर सीधे उसकी गोद में आकर गिर पड़ी। पतंग ने फुसफुसाकर उससे कहा, "तुमने मेरा ध्यान रखा था, इसलिए मैं तुम्हारी सहायता करने आयी हूँ। तुम जल्दी से मेरी दुम पकड़ लो।" यतिन ने ऐसा ही किया।

पतंग उसे लेकर सर्र से आसमान में चली गयी। यह शब्द सुनकर सारे दर्जी अपनी बड़ी-बड़ी कैंचियाँ लेकर उसकी डोर काटने के लिए भागे। अचानक पतंग और यतिन एक-दूसरे से लिपटकर

नीचे की ओर गिरने लगे। गिरते-गिरते जैसे ही यतिन का सिर ज़मीन से टकराया, वह अचानक ज़ोर से चौंक पड़ा। पतंग न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी?

यतिन ने देखा, वह सीढ़ियों के नीचे पड़ा हुआ था और उसके सिर में ज़ोर का दर्द हो रहा था।

कुछ दिनों की तकलीफ़ के बाद यतिन स्वस्थ हुआ। उसकी माँ कहतीं, "बेचारा! सीढ़ियों से गिरकर, इतना भुगतने के बाद मेरा लाल बड़ा कमज़ोर हो गया है। न उसमें पहले जैसी फुर्ती रही, न वह उछलते-कूदते हुए चलता है। पहले जैसा कुछ भी नहीं वरना एक जोड़ी चप्पलें चार महीने चल पातीं?"

सच्ची बात तो यह है कि यतिन अभी तक उन मोचियों और दर्जियों को भुला नहीं पाया है।

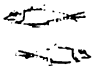

डिटेक्टिव

जलधर के मामा पुलिस में नौकरी करते थे और उसके फूफा जासूसी उपन्यास लिखते थे। इसीलिए जलधर को भरोसा था कि चोर-डाकूओं, धोखेबाज़ों को क़ाबू में करने का हर प्रकार का तरीक़ा वह जितना जानता था, उतना उसके मामा और फूफा को छोड़कर किसी को नहीं पता था। किसी के घर में चोरी आदि होने पर जलधर सबसे पहले वहाँ पहुँच जाता और किसने चोरी किया, कैसे चोरी हुआ, वह रहता तो ऐसी हालत में क्या करता, इन सबके बारे में किसी अनुभवी की तरह बातें करता था।

योगेश बाबू के घर से जब बर्तन चोरी हुए, तब जलधर ने उनसे कहा, "आप लोग ज़रा भी सावधान रहना नहीं जानते, चोरी तो होगी ही। अब देखिए, आपके भण्डार घर के बग़ल में ही अँधेरी गली है, इधर खिड़की में सींखचे भी नहीं हैं। किसी भी चतुर आदमी को यहाँ से बर्तन लेकर भागने में कितना समय लगेगा। हमारे घर में ऐसा होना सम्भव नहीं। मैंने रामदीन से कह रखा है कि खिड़की की दीवार से बर्तनों को इस तरह सटाकर रखे कि खिड़की खोलते ही सारे बर्तन झन-झन करते हुए ज़मीन पर गिर पड़ें। चोर को पकड़ने के लिए ये सब तरीक़े जानने पड़ते हैं।" यह सुनकर हम सभी ने जलधर की बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की।

लेकिन दूसरे ही दिन जब सुना कि उसी रात को जलधर के घर में बहुत बड़ी चोरी हो गयी है, तब लगा कि उसका एक दिन पहले ही अपने बारे में इतना हाँकना ठीक नहीं था। मगर जलधर इस बात से ज़रा भी परेशान नहीं था। उसने कहा, "इस अक़्ल के अन्धे रामदीन की बेवक़ूफ़ी से सब मिट्टी में मिल गया। ख़ैर, मेरा सामान चोरी करके वह हज़म नहीं कर सकता। ज़रा दो-चार दिन बीतने दो।"

दो महीने बीते, चार महीने बीते, मगर चोर पकड़ में नहीं आया। चोर के उपद्रव की बात सभी भूल ही चुके थे, ऐसे समय हमारे स्कूल में फिर से चोरी का हंगामा शुरू हो गया। छात्रों में काफ़ी लड़के अपना टिफ़िन लाया करते थे, उसमें से खाना चोरी होने लगा। पहले दिन रामपद का खाना चोरी हो गया। वह बेंच पर रबड़ी और पूड़ी रखकर हाथ धोने गया था, इसी बीच न जाने कौन आकर पूड़ी वग़ैरह खाकर सटक गया। इसके बाद कक्षा में और भी दो-चार लड़कों का खाना चोरी चला गया। तब हम लोगों ने जलधर को पकड़ा, "क्यों जी डिटेक्टिव! ऐसे मौक़े पर तुम्हारी चोर पकड़ने की बुद्धि नहीं खुल रही है? इसका क्या मतलब है, ज़रा बताओ तो?"

जलधर ने कहा, "मैं क्या अपनी बुद्धि नहीं लड़ा रहा हूँ? ज़रा सब्र करो।" तब उसने बड़ी सतर्कता से हमारे कान में कहा कि स्कूल में जो नया छोकरा चपरासी आया है, उसका सन्देह उसी पर है, क्योंकि उसी के आने के बाद से चोरी शुरू हुई है।

हम सभी उस दिन से उसपर नज़र रखने लगे। लेकिन दो दिन बीतते-न-बीतते ही फिर चोरी शुरू हो गयी। बेचारे पगला दासू ने घर से कबाब लाकर टिफ़िनवाले कमरे की बेंच पर नीचे उसे छिपाकर रख दिया था, मगर न जाने कौन आकर उसका आधा हिस्सा हड़पकर बाक़ी धूल में फेंककर बर्बाद कर गया था। पगला ने तब मारे ग़ुस्से के चीख़ते-चिल्लाते गालियाँ देते हुए पूरे स्कूल को सिर पर उठा लिया। हम सभी ने उससे कहा, "अरे चुप कर चुप, इतना शोर मत मचा। वरना चोर पकड़ा कैसे जाएगा?"

मगर पगला भला इतनी आसानी से शान्त हो जाता! तब जलधर ने ही उसे समझाया, "बस, दो दिन और धैर्य रख। इस नये छोकरे को तो मैं रँगे हाथों पकड़वा दूँगा, यह सब उसी की कारस्तानी है।"

यह सुनकर दासू ने कहा, "तुम्हारी भी कैसी बुद्धि है! ये सब हिन्दी भाषी इलाक़े के ब्राह्मण लोग हैं। ये लोग भला गोश्त खाएँगे? ज़रा दरबान जी से पूछकर देख लो।"

वाक़ई, हम लोगों के ध्यान में तो यह बात आयी ही नहीं थी। छोकरा तो कई दिनों से अपने हाथ से रोटी पकाकर खा रहा था, मगर एक दिन भी उसे मांस-मच्छी खाते नहीं देखा। दासू चाहे पगला हो या कुछ और हो, उसकी यह बात सभी को माननी पड़ी।

मगर जलधर घबरानेवाला लड़का नहीं था। उसने मुस्कुराते हुए कहा, "मैंने जानबूझकर तुम सबको ग़लत कहा था। अरे, चोर जब तक पकड़ा नहीं जाता, तब तक उसके बारे में कभी कुछ कहना चाहिए? कोई भी पक्का जासूस ऐसा नहीं करता। मैं मन-ही-मन जिसे चोर समझता हूँ, उसे मैं जानता हूँ।"

इसके बाद कुछ दिन हम लोग बड़े सावधान थे। आठ-दस दिन चोरी बन्द रही। तब जलधर ने कहा, "तुम लोगों ने हो-हल्ला मचाकर सारा काम बिगाड़ दिया। चोर को पता चल गया कि मैं उसके पीछे लगा हूँ। अब भला उसे चोरी करने का साहस हो सकता है? यह अच्छा हुआ कि मैंने तुम सबको असली नाम बताया नहीं था।" मगर उसी दिन पता चला कि ख़ुद हेडमास्टर साहब के कमरे से उनका टिफ़िन चोरी हो गया। मैंने कहा, "क्यों जी, चोर तो तुम्हारे ही डर से चोरी नहीं कर पा रहा था न। लगता है उसका डर हिरन हो गया है।"

इसके बाद दो दिनों तक जलधर के चेहरे पर हँसी नज़र नहीं आयी। चोर के बारे में सोचते-सोचते उसकी पढ़ाई ऐसी गड़बड़ा गयी कि एक दिन वह मार खाते-खाते बचा। दो दिन बाद उसने हम सभी को बुलाकर कहा, उसने चोर पकड़ने का बन्दोबस्त कर लिया है। टिफ़िन के समय कमरे में वह एक ढोंगे में पनीर पकौड़ी, पूड़ी और दमआलू रखकर बाहर चला आएगा।

इसके बाद कोई भी उधर नहीं जाएगा।...स्कूल के बाहर से छिपकर टिफ़िनवाले कमरे में नज़र रखी जा सकती है। हम कुछ लड़के घर जाने का बहाना करके वहीं से छिपकर देखेंगे। कुछ लड़के आँगन के पश्चिमी कोनेवाले कमरे में रहेंगे। इसलिए चोर भले ही किधर से आये, टिफ़िनवाले कमरे में घुसते ही वह पकड़ा जाएगा।

उस दिन टिफ़िन की छुट्टी न होने तक किसी का भी मन पढ़ाई में नहीं लगा। सभी सोच रहे थे कि जल्दी छुट्टी हो और फटाफट चोर पकड़ा जाए। चोर को पकड़ने के बाद उसका क्या किया जाए, इस पर भी बात होने लगी। इससे मास्टर साहब नाराज़ हो गये। उन्होंने न सिर्फ़ सभी को डाँटा, बल्कि परेश और विश्वनाथ को बेंच पर खड़े होने की सज़ा भी दे दी...मगर समय जैसे बीत ही नहीं रहा था। टिफ़िन की छुट्टी होते ही जलधर अपने खाने का ढोंगा टिफ़िनवाले कमरे में रख आया। जलधर, मैं और दस-बारह लोग आँगन के कोनेवाले कमरे में चले गये और कुछ लड़के बाहर जिमनास्टिकवाले कमरे में छिप गये।

जलधर ने कहा, "देखो यह चोर बेहद सयाना है और हिम्मती भी, उससे मारपीट करना ठीक नहीं होगा। वह काफ़ी हट्टा-कट्टा भी होगा। मेरा कहना है कि वह अगर इधर आये तो सभी मिलकर उसपर स्याही फेंक दें और शोर करें। इससे दरबान वग़ैरह सभी भागते हुए आ जाएँगे। और, वह आदमी अगर भागे भी तो स्याही के चिह्न से पकड़ा जाएगा।" रामपद ने पूछा, "वह चोर ख़ूब तगड़ा होगा, यह कैसे कहा जा सकता है? वह राक्षस की तरह ख़ूब खाता है, ऐसा तो नहीं लगता। वह जो कुछ भी चुराता है, वह थोड़ा-सा ही होता है।"

जलधर बोला, "तुम्हारी भी कैसी बुद्धि है! राक्षस की तरह ढेर-सा खाने से ही क्या आदमी तगड़ा हो जाता है? तब तो हमारे श्यामादास को ही सबसे तगड़ा कहना होगा। घोष के यहाँ दावत में उसे खाते हुए देखा था न! भैया, मैं जो भी कहता हूँ, उसे काटने की ज़रूरत नहीं। और अगर तुममें वाक़ई हिम्मत हो तो जाकर चोर से भिड़ जाओ। हम लोग इसमें आपत्ति नहीं करेंगे। मुझे पता है, यह किसी मामूली चोर का काम नहीं है। बल्कि मुझे तो यक़ीन है कि जिस व्यक्ति ने मेरे घर में चोरी की है, यह भी उसी की करामात है।"

तभी अचानक टिफ़िनवाले कमरे की बायीं ओर की खिड़की थोड़ी-सी खुल गयी, जैसे उसे कोई भीतर से ढेल रहा हो। उसके बाद सफ़ेद जैसी कोई चीज़ झप्प से आँगन में कूदी। हमने आँखें फाड़कर देखा, वह एक मोटा ताज़ा बिल्ला था—उसके मुँह में जलधर की मिठाई थी। उस समय अगर जलधर के चेहरे पर किसी की नज़र पड़ी होती। वह मुँह बाए आँगन की ओर देख रहा था।

हम लोगों ने उससे पूछा, "क्यों भैया डिटेक्टिव! क्या इस मुस्टण्डे चोर ने ही तुम्हारे यहाँ चोरी की थी? कहो तो इसे पकड़कर पुलिस को दे दें।"

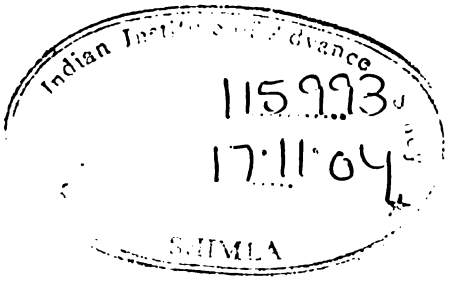

यज्ञदास के मामा

उसका असली नाम यज्ञदास था। वह जिस दिन पहली बार हमारी कक्षा में आया, पण्डितजी ने उसका नाम सुनते ही भौंहें सिकोड़कर कहा, "यज्ञ का भी भला दास होता है? यज्ञेश्वर होता तो तब भी कोई बात थी।" उसने कहा, "जी, अपना नाम मैंने तो नहीं रखा है, यह नाम ताऊजी का दिया हुआ है।"

यह सुनकर मुझे ज़रा हँसी आ गयी, जिससे पण्डितजी ने मेरी ओर देखकर कहा, "यज्ञदास के हिज्जे बता।" मैंने थोड़ा घबराते हुए कहा, "वर्गी का ज..." पण्डितजी बोले, "तू खड़ा हो जा!" इसके बाद जब एक लड़के ने सही जवाब दिया तो उन्होंने एक और लड़के से कहा, "समास कर।" उसने अपनी संस्कृत विद्या दर्शाते हुए कहा, "योग्यश्चेति दासश्चासो।"

पण्डितजी उसका कान पकड़कर बोले, "बेंच पर खड़ा हो जा!"

दो दिन बीतते-बीतते पता चल गया कि यज्ञदास को और कोई विद्या आये या न आये, उसमें अजीबोगरीब कहानियाँ कहने की असाधारण क्षमता थी। एक दिन वह देर से स्कूल में आया। कारण पूछने पर उसने कहा, "आते वक़्त रास्ते में पच्चीस कुत्ते मुँह फाड़कर मेरे पीछे पड़ गये थे। मैं भागकर हाँफते-हाँफते उस कुण्डू के घर तक चला गया था।"

हम लोगों ने तो पच्चीस कौन कहे, दस कुत्ते भी कभी एक साथ नहीं देखे थे, इसलिए मास्टर साहब को भी यक़ीन नहीं हुआ। उन्होंने पूछा, "ऐसी झूठी बातें बनाना किससे सीखा?" यज्ञदास ने बताया, "जी, अपने मामा से।" उस दिन हेडमास्टर के कमरे में यज्ञदास की पेशी हुई थी। वहाँ क्या हुआ, हमें पता नहीं। मगर यज्ञदास ख़ुश नहीं था, यह बात समझ में आ गयी।

मगर सच हो या झूठ, क़िस्सा कहने में वह उस्ताद था। वह जब अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर बड़े गम्भीर गले से अपने मामा के यहाँ डाकू पकड़े जाने का क़िस्सा सुनाता, तब यक़ीन आये चाहे न आये, हमारे मुँह अचरज से खुल जाते। यज्ञदास के मामा का वर्णन तो हमें बेहद आश्चर्यजनक लगता। उनके शरीर में जैसा बल था, वैसी ही उनकी असाधारण बुद्धि थी। वे जब अपने नौकर रामभजन को पुकारते थे, तब पूरा मकान थरथराकर काँप उठता। चाहे कुश्ती हो या लाठी भाजना या क्रिकेट, सभी में वे बेजोड़ थे। पहले तो हम लोगों को उसकी बात पर यक़ीन नहीं हुआ था। लेकिन एक दिन उसने हमें अपने मामा का फ़ोटो दिखाया। हमने देखा, वाक़ई पहलवानों जैसा

उनका चेहरा था। स्कूल में जब भी छुट्टी होती, यज्ञदास अपने मामा के यहाँ चला जाता। वहाँ से लौटकर वह जो-जो क़िस्से हमें सुनाता, वे अख़बार में छपने लायक़ होते।

एक दिन यज्ञदास से स्टेशन पर मेरी भेंट हो गयी। मैंने देखा, गाड़ी में सिर पर पगड़ी बाँधे लम्बी-चौड़ी क़द-काठीवाले कोई देहाती सज्जन बैठे थे। मैंने स्कूल आते वक़्त यज्ञदास से पूछा, "क्या तुम्हारी भी उस पगड़ीवाले भारी-भरकम व्यक्ति पर नज़र पड़ी?" यज्ञदास ने कहा, "वही तो मेरे मामा थे।" मैंने कहा, "तस्वीर में तो वे काले नज़र आ रहे थे।" यज्ञदास बोला, "वे इस बार शिमला जाकर गोरे हो गये हैं।"

मैंने स्कूल पहुँचकर सभी को बताया कि मैंने आज यज्ञदास के मामा को देखा है। यज्ञदास ने भी सीना फुलाकर अपना चेहरा ग़म्भीर करके कहा, "तुम लोग तो मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते। ठीक है, बीच-बीच में मैं एकाध गप्प सुना देता हूँ। ऐसा नहीं कि सभी बातें मेरी गढ़ी हुई होती हैं। मेरे जीते-जागते मामा को भी तुम लोग नकार देना चाहते हो।" इस बात पर कइयों को शर्म भी महसूस हुई। वे कहने लगे, "नहीं भाई, हमें शुरू से ही तुम्हारी बातों पर भरोसा था।"

इसके बाद से यज्ञदास के मामा का रुतबा और ज़्यादा बढ़ गया। मामा के बारे में जानने के लिए हम लोग उत्सुक रहते। किसी दिन सुनते उसके मामा हाथी, गेण्डे, बाघ के शिकार को गये हैं, किसी दिन सुनते, उन्होंने अकेले ही पाँच काबुलीवालों को पीटकर दुरुस्त कर दिया है। ऐसे क़िस्से हम अक्सर सुनते। एक दिन जब हम सभी टिफ़िन के समय बैठकर बातें कर रहे थे, तब हेडमास्टर साहब ने कक्षा में आकर कहा, "यज्ञदास, तुम्हारे मामा आये हैं।" अचानक यज्ञदास का चेहरा आम की खटाई की तरह सिकुड़ गया। वह बड़े संकोच से कुछ कहने को हुआ, पर कह नहीं पाया। वह एक भले लड़के की तरह चुपचाप हेडमास्टर साहब के साथ चला गया। हम लोगों ने कहा, "बेचारा घबराएगा नहीं? जानते तो हो ही, कैसे मामा हैं।"

हम सभी उसके मामा को देखने के लिए उतावले हो गये। मगर वहाँ जाकर देखा तो पाया कि एक दुबले-पतले काले रंग के छोकरे जैसे महानुभाव चश्मा चढ़ाए गोबर गणेश की तरह बैठे हुए थे। यज्ञदास ने उन्हें जाकर प्रणाम किया।

उस दिन सचमुच हमें बेहद ग़ुस्सा आया था। ऐसा धोखा! हमें एक झूठमूठ के मामा के बारे में बताता रहा? उस दिन हम लोगों की खिंचाई से यज्ञदास के आँसू निकल आये। उसने मान लिया कि वह फ़ोटो वास्तव में किसी पुरबिया पहलवान की थी। उस दिन उसने गाड़ी में बैठे जिस व्यक्ति को अपना मामा बताया था, उसे वह ख़ुद भी नहीं जानता था।

उसके बाद से किसी अजीबोगरीब चीज़ की चर्चा होते ही हमारे मुँह से निकल जाता, क्या यज्ञदास के मामा की तरह?

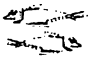

पेटू

"हरिपद! ओ हरिपद!"

हरिपद की ओर से कोई जवाब नहीं मिला। सभी मिलकर उसे ज़ोर-ज़ोर से पुकार रहे थे, मगर हरिपद मौन था। क्यों, हरिपद क्या बहरा था? उसे कम सुनाई पड़ता था? नहीं, वह कम क्यों सुनेगा? वह तो हर बात साफ़ सुन लेता था। तो क्या हरिपद घर में नहीं था? ऐसा भी नहीं था। हरिपद के मुँह में रबड़ी का लड्डू ठूँसा हुआ था। न उसे फेंकते बन रहा था न निगलते। वह जवाब कैसे देता? साथ ही वह लोगों की पुकार सुनकर फटाफट आ भी नहीं सकता था...पकड़े जाने का डर था। इसीलिए वह जल्दी-जल्दी लड्डू पानी के सहारे निगलने की कोशिश कर रहा था। मगर निगलने की जितनी कोशिश करता, उतना ही लड्डू उसके गले में आटे की तरह चिपकता जा रहा था, बस खाँसी का दौरा पड़ना बाक़ी था।

हरिपद की यह बड़ी बुरी आदत थी। इसके लिए उसे कितनी डाँट पड़ी थी, सज़ा भुगतनी पड़ी थी, मगर उसे अक़्ल नहीं आयी। वह चोरी-छिपे पेटुओं की तरह खाता ही रहता। जैसा हरिपद था, वैसा ही उसका छोटा भाई भी था। हालाँकि उसे कुछ भी हज़म नहीं होता था, दो-चार दिन बाद ही उसे पेट की बीमारी हो जाती थी, मगर लोभ नहीं कम होता था। जिस दिन उसे ज़्यादा तकलीफ़ हो जाती, उसके बाद कुछ दिनों तक वह ऐसा काम न करने की प्रतिज्ञा करता। देर-सवेर के अखाद्य खाने-पीने से रात में जब उसका पेट दुखता तब वह रोते हुए कहता, "अब और नहीं, यही आख़िरी बार था।" मगर दो दिन बीतते-न-बीतते फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता।

अभी कुछ दिन पहले ही बुआजी के कमरे में दही खाते हुए वह पकड़ा गया था। काफ़ी भुगतना भी पड़ा। मगर उसे शर्म नहीं आयी। हरिपद के छोटे भाई श्यामापद ने आकर उससे कहा, "दादा, जल्दी चलो। बुआजी ने अभी-अभी हाण्डी भर दही अपने खाट के नीचे छिपाकर रखा है।" उसे बड़े भैया को इतनी उतावली के साथ ख़बर देने की ज़रूरत इसलिए पड़ी थी, क्योंकि बुआजी के कमरे के दरवाज़े की साँकल तक उसका हाथ नहीं पहुँच पाता था। इसीलिए उसे बड़े भैया की सहायता की ज़रूरत पड़ी थी। बड़े भैया ने धीरे-से साँकल खोलकर झपटकर पहले ही खाट के नीचे रखी दही की हाण्डी से मुट्ठीभर दही निकालकर मुँह में भर लिया और दूसरे

ही क्षण वह चीख़ने लगा—जैसा कि बोलचाल में लोग कहते हैं—साँड की तरह चिल्लाना। लेकिन हरिपद उससे भी ज़्यादा भयावह रूप से चीख़ रहा था। उसकी चीख़ सुनकर माँ-मौसी, दीदी-बुआ जो जहाँ थीं, भागकर वहाँ पहुँची। श्यामापद चालाक था। वह बड़े भैया की चीख़ का नमूना सुनते ही वहाँ से भागकर घोष मुहल्ले में चला गया। वहाँ पहुँचकर भले लड़के की तरह अपने दोस्त शान्ति घोष से पढ़ाई का पाठ समझने लगा।

इधर हरिपद की हालत देखकर बुआजी समझ गयी कि हरिपद ने दही के धोखे से उनकी चूने की हण्डिया से चूना चख लिया है। उस बार हरिपद को ज़बर्दस्त सज़ा मिली। सप्ताह भर तक न उससे कुछ खाते और न निगलते बना। उसके लोभ से ही उसकी ऐसी आफ़त आयी थी। इसके बावजूद वह लज्जित नहीं हुआ। आज फिर वह छिपकर लड्डू खा रहा था। उधर उसके मामा उसे हाँक लगा-लगाकर परेशान हो रहे थे।

थोड़ी देर बाद अपना मुँह धो-पोंछकर हरिपद सुशील बालक की तरह हाज़िर हो गया। हरिपद के बड़े मामा बोले, "अरे, अभी तक कहाँ था?" हरिपद ने जवाब दिया, "यहीं ऊपर तो था।" "तो फिर हम लोग इतना पुकार रहे थे, तूने जवाब क्यों नहीं दिया?" हरिपद ने सिर खुजलाकर कहा, "जी, पानी पी रहा था।" "सिफ़ जल? या कुछ स्थल भी था?"

हरिपद ऐसे हँसा, जैसे उससे कोई तगड़ा मज़ाक़ किया गया हो। तभी उसके मँझले मामा बेहद गम्भीर होकर वहाँ उपस्थित हुए। उन्हें भीतर से ख़बर मिली थी कि हरिपद कुछ देर पहले भण्डार घर में घुसा था और उसके बाद से ही दस-बारह रबड़ी के लड्डू कम हो गये थे। वे आते ही हरिपद के मामा से अंग्रेज़ी में फुसफुसाकर कुछ बोले। इसके बाद सबको सुनाते हुए उन्होंने गम्भीरता से कहा, "घर में चूहों का जैसा उत्पात शुरू हुआ है, उससे लगता है कि चूहों को मारने का कोई बन्दोबस्त किये बिना काम नहीं चलनेवाला। चारों तरफ़ प्लेग की महामारी और बीमारी भी फैली हुई है। इस मुहल्ले के चूहों को ख़त्म किये बिना जान नहीं बचनेवाली।" बड़े मामा बोले, "हाँ, इसका इन्तज़ाम भी कर लिया गया है। दीदी से मैंने ज़हर के लड्डू बनाने के लिए कहा है—उन्हें एक बार चारों तरफ़ रख देने से ही चूहों का समूल विनाश हो जाएगा।"

हरिपद ने पूछा, "लड्डू कब बनाए जाएँगे?" बड़े मामा बोले, "अब तक वे बन गये होंगे। सुबह ही मैंने देखा कि टेंपी थाली भर रबड़ी लेकर दीदी के साथ लड्डू बना रही थी।"

हरिपद का चेहरा आम की खटाई की तरह सिकुड़ गया। उसने लार निगलकर पूछा, "धतूरे का ज़हर खाने से क्या होता है बड़े मामा?" "क्या होगा! सारे चूहे मर जाएँगे, यही होगा।" "और अगर कोई आदमी ऐसे लड्डू खा ले?" "एक आध अगर खा ले तो शायद न मरे...मगर गले में जलन होगी, चक्कर आने लगेंगे, उल्टी होने लगेगी, शायद हाथ-पैरों में ऐंठन भी होने लगे।" "और अगर वह एक साथ ग्यारह लड्डू खा ले?" कहते हुए हरिपद ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। यह देखकर बड़े मामा किसी तरह अपनी हँसी दबाकर बड़ी गम्भीरता से बोले, "यह क्या कह रहा है!

क्या तूने खाये हैं?" हरिपद ने रोते हुए कहा, "हाँ बड़े मामा, उनमें पाँच तो काफ़ी बड़े लड्डू थे। तुम जल्दी डॉक्टर बुलाओ बड़े मामा, मुझे जाने कैसी हरारत लग रही है और उल्टी भी महसूस हो रही है।"

मँझले मामा झटपट जाकर अपने दोस्त रमेश डॉक्टर को पड़ोस से बुला जाए। उन्होंने पहले एक बेहद कड़वी दवा हरिपद को खिलाई। उसके बाद उसे न जाने क्या सूँघने को दिया। वह इतनी तेज़ थी कि बेचारे की दोनों आँखों से ख़ूब पानी निकलने लगा। इसके बाद सभी ने उसे रजाई-कम्बल ओढ़ाकर उसे पसीने के मारे बेचैन कर दिया। उसके बाद उसे एक न जाने कैसी दवा पिलाई गयी। वह इतनी बेस्वाद और बदबूदार थी कि उसे पीते ही हरिपद उल्टी करने लगा।

इसके बाद डॉक्टर साहब जाते-जाते उसके पथ्य के बारे में बता गये, "तीन दिन तक वह चुपचाप बिस्तर पर लेटा रहे। चिरेता का पानी और साबूदाना छोड़कर उसे कुछ न दिया जाए।" हरिपद ने कहा, "मैं ऊपर माँ के पास जाऊँगा?" डॉक्टर ने कहा, "नहीं, जब तक बचने की उम्मीद है, तब तक ज़रा भी हिलना-डुलना मना है। वह यहीं पर आप लोगों के पास ही रहे।"

बड़े मामा ने कहा, "हाँ हाँ, माँ के पास जाओगे या और कुछ! माँ को चिन्तित करके क्या लाभ? उन्हें इस वक़्त ख़बर देने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

तीन दिन बाद जब उसे रिहाई मिली, तब वह पहलेवाला हरिपद नहीं रह गया था। वह एकदम बदल गया था। उसके घर के सभी लोगों को तो यही पता था कि हरिपद बेहद बीमार हो गया था। उसकी माँ से भी यही कहा गया था कि ज़्यादा लड्डू खाने से उसका पेट ख़राब हो गया था। हरिपद समझ रहा था कि ज़हर खाकर मरने से वह बाल-बाल बच गया था। लेकिन असली बात तो हरिपद के बड़े और मँझले मामा तथा रमेश डॉक्टर को ही पता थी—और अब इस कहानी को पढ़कर तुम सब भी जान चुके हो।

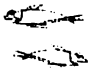

एक था सौदागर, जिसके एक मामूली ग़ुलाम ने उसके इकलौते बेटे को डूबने से बचाया था। सौदागर ने ख़ुश होकर उसे आज़ाद तो किया ही, इसके अलावा जहाज़ भरकर व्यापार की विभिन्न चीज़ें बख़्शीश में देकर कहा, "समुद्र पार करके विदेश जाओ, इन सामानों को बेचकर जो तुम कमाओगे, वह तुम्हारा होगा।" वह ग़ुलाम अपने मालिक से विदा लेकर जहाज़ से व्यापार करने रवाना हो गया।

मगर व्यापार करना सम्भव नहीं हुआ। बीच समुद्र में उठे भयंकर तूफ़ान ने जहाज़ को चकनाचूर करके उसमें लदे माल और लोगों को इस तरह डुबो दिया कि किसी का कुछ पता ही नहीं चला।

वह ग़ुलाम बड़े कष्टों से डूबता-उतराता आख़िरकार एक द्वीप पर पहुँचा। तट पर पहुँचकर उसने चारों तरफ़ नज़र फेरी तो उसके जहाज़ का कोई चिह्न भी उसे नज़र नहीं आया। न उसका कोई आदमी ही दिखाई पड़ा। तब वह हताश होकर समुद्र किनारे की रेत पर बैठ गया। जब शाम हो गयी, तब वह उठकर द्वीप के भीतर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहले उसे ख़ूब बड़े-बड़े पेड़ों का जंगल मिला, फिर काफ़ी बड़ा मैदान और उसके ठीक बीचोंबीच एक ख़ूबसूरत शहर नज़र आया। शहर के फाटक से हाथों में मशाल लिये काफ़ी लोग बाहर आ रहे थे। उसे देखते ही वे सभी चीख़ने लगे, "महाराज का शुभागमन हो। महाराज दीर्घजीवी हों।" इसके बाद सब उसकी ख़ातिर करके आँखों को चौंधियानेवाली गाड़ी में उसे बिठाकर एक बहुत बड़े महल में ले गये। वहाँ के नौकरों ने फटाफट राजकीय वस्त्र लाकर उसे सज्जित कर दिया।

सभी लोग उसे 'महाराज' कहकर ही सम्बोधित कर रहे थे। उसका हुक्म पाते ही झटपट वह काम कर देते। यह सब देखकर तो वह बेचारा हैरान रह गया। उसे लगा यह शायद कोई सपना है या उसका दिमाग़ ख़राब हो गया है, जिससे ऐसा लग रहा है। लेकिन धीरे-धीरे उसकी समझ में आ गया कि वह जगा हुआ ही है और पूरी तरह होश में है, और जो कुछ घट रहा है वह सब सत्य ही है। तब उसने लोगों से कहा, "यह क्या माजरा है, ज़रा मुझे बताओ तो! मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। तुम लोग आख़िर क्यों मुझे महाराज कह रहे हो और क्यों ऐसा सम्मान जता रहे हो?"

तब उनमें से एक बूढ़े ने उठकर कहा, "महाराज, हम लोग मनुष्य नहीं हैं। हम सभी प्रेत-गन्धर्व हैं, हालाँकि हम देखने में ठीक मनुष्यों जैसे ही हैं। काफ़ी दिन पहले हम सभी लोगों ने 'मनुष्य राजा' पाने के लिए प्रार्थना की थी, क्योंकि मनुष्यों से बढ़कर बुद्धिमान और कौन हो

सकता है! तब से लेकर आज तक हमें मनुष्य राजाओं की कमी नहीं हुई। हर साल एक मनुष्य ही आता है और उसे हम लोग सालभर के लिए राजा बना देते हैं। उसका राजकाज सिर्फ़ सालभर के लिए ही होता है। साल ख़त्म होते ही, उसे सब कुछ छोड़ना पड़ता है। उसे जहाज़ से एक रेगिस्तानी देश में पहुँचा आते हैं, जहाँ थोड़े बहुत फलों को छोड़कर और कुछ नहीं पैदा होता और दिनभर हाड़तोड़ मेहनत करके रेत न खोदने पर एक लोटा पानी भी नहीं मिलता। इसके बाद फिर नया राजा आता है...इसी तरह साल-दर-साल हम लोगों का काम चल रहा है।"

यह सुनकर ग़ुलाम राजा ने कहा, "अच्छा, ज़रा बताओ, इसके पहले के तुम्हारे राजाओं का स्वभाव कैसा था?" बूढ़े ने कहा, "वे सभी लापरवाह और झक्की थे। वे सभी मौज-मस्ती और विलासिता में पूरा साल बिता देते थे। साल के अन्त में क्या होगा, इसका उन्हें ध्यान ही नहीं रहता था।"

नये राजा ने बड़े ध्यान से सब कुछ सुना। साल के अन्त में उसका क्या होगा, यह सोचकर उसे कई दिनों तक नींद नहीं आयी।

इसके बाद उस देश के सर्वाधिक ज्ञानी और पण्डितों को बुलवाया गया। राजा ने उनसे विनयपूर्वक कहा, "आप लोग मुझे उपदेश दीजिए, जिससे साल के अन्त में उस सर्वनाशी दिन के लिए मैं ख़ुद को तैयार कर सकूँ।"

तब, उनमें जो सबसे ज़्यादा वृद्ध था, उसने कहा, "महाराज आप ख़ाली हाथ आये थे, ख़ाली हाथ ही फिर आपको उस देश में जाना पड़ेगा...लेकिन इस एक साल में आप हमसे जो भी चाहे काम करवा सकते हैं। मेरा सुझाव है, आप इस समय इस राज्य के उस्ताद लोगों को उस देश में भेजकर वहाँ घर-बार बनवाकर, खेती-बाड़ी की व्यवस्था करके चारों तरफ़ मनोरम वातावरण बनवा लें। तब तक फल-फूल से वह देश भर जाएगा। वहाँ लोगों का आना-जाना शुरू हो जाएगा। तब यहाँ का राजपाट ख़त्म होने के बाद आप वहाँ जाकर सुख से वहाँ का राजपाट भोग सकेंगे। साल तो देखते-देखते बीत जाएगा, मगर अब आपको काफ़ी काम करवाना है। इसलिए मेरी राय है कि इस वक़्त आराम न करके अपना भविष्य बना लीजिए।"

राजा ने तभी हुक्म देकर लोग-लश्कर, माल-अरवाब, वृक्षों के पौधे, फलों के बीज तथा भारी-भारी कल-पुर्ज़े भेजकर पहले से ही उस रेगिस्तान को सुसज्जित करवा दिया।

उसके बाद साल जब ख़त्म होने को आया, तब वहाँ की प्रजा ने उसका छत्र राजमुकुट, राजदण्ड आदि सब वापस ले लिया। उसकी राजसी पोशाक उतरवाकर सालभर पहले के वही मामूली कपड़े पहनाकर उसे जहाज़ में चढ़ाकर उस रेगिस्तानी देश में भेज दिया। लेकिन अब वहाँ रेगिस्तान कहाँ था? चारों तरफ़ घर-बार, राह-घाट, ताल और बग़ीचे नज़र आ रहे थे। वहाँ अब काफ़ी आबादी भी बस गयी थी। वहाँ के लोगों ने बड़े उत्साह से शंख-घण्टा बजाकर उसकी अगवानी करके उसे ले जाकर सिंहासन पर बिठा दिया। एक साल के राजा ने वहाँ जीवनभर के लिए राजसुख भोगना शुरू कर दिया।

मेंढक राजा

राजमहल में जाने का जो रास्ता था, उसी रास्ते के किनारे बहुत बड़ी दीवार थी, उस दीवार के एक तरफ़ मेंढकों का तालाब था। सोना मेंढक, मोटा मेंढक, गाछी मेंढक, मैदानी मेंढक—सभी का घर उसी तालाब के किनारे था। मेंढकों का सरदार जो बूढ़ा मेंढक था, वह दीवार के किनारे पर पुराने वृक्ष की दरार में रहता था, जो सुबह होते ही सभी को आवाज़ देकर जगाता था—"आ-आ-आ, गेंक-गेंक-गेंक-देख-देख-देख- बेंगू-बेंगू-बेंगू-बेंगाची।" यह कहकर वह घमण्ड से गाल फुलाकर पानी में कूद पड़ता। और तभी सारे मेंढक 'आया-आया-आया-थाक्-थाक्-थाक्' कहकर नींद से उठकर, मुँह धोकर, दाँत माँजकर तालाब के किनारे की सभा में बैठ जाते थे।

एक दिन क्या हुआ कि सरदार मेंढक मारे फुर्ती के ऐसा उछला कि एकदम दीवार लाँघकर राजपथ के ठीक बीच में जाकर गिरा। राजा उस वक़्त सभा की ओर प्रस्थान कर रहे थे। उनके साथ सिपाही-सन्तरी, लाव-लश्कर, दल-बल सभी चले रहे थे। सभी के पैरों में मोटे-मोटे नागरा जूते थे। वे सभी खट-खट, मच-मच, घेंच-घेंच करके कभी उसके अगल-बग़ल, दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे इस तरह से गुज़र रहे थे कि बूढ़े मेंढक को लगा कि अब वह बचनेवाला नहीं। अचानक उसे न जाने कहाँ से किसी की लाठी या छाता या धक्का धाँय से लगा कि वह दर्द से दोहरा होकर रास्ते के किनारे घास पर चित्त होकर गिरा।

बूढ़े मेंढक को काफ़ी चोट लगी थी, मगर उसके हाथ-पैर टूटे नहीं थे। वह धीरे-धीरे उठकर बैठ गया, फिर चारों तरफ़ ताककर दीवार में बनी एक सूराख देखकर झटपट उसमें घुस गया। वहाँ से बड़ी सावधानी से गर्दन निकालकर उसने देखा, सिर पर मुकुट और रंगीन पोशाक पहने राजा, रोशनी से दमकते चार कहारों की पालकी में बैठकर राजसभा की ओर जा रहे थे। सभी लोग 'राजा-राजा' कहकर उन्हें प्रणाम कर रहे थे, नाच-गा रहे थे और आगे-पीछे दौड़ रहे थे। उसे लगा राजा एकबार उसकी ओर देखकर फिक् से हँसे भी। बूढ़े मेंढक ने तभी दुःख से गहरी साँस लेकर सोचा, काश हमारा भी कोई राजा होता।

इसके बाद जब घूमते-भटकते रास्ता तलाशते हुए वह वापस घर लौटा, तब शाम ढलने लगी थी। उसे देखकर सभी पूछने लगे, "बूढ़े सरदार, बूढ़े सरदार तुम दिनभर कहाँ रहे? हम लोगों ने तुम्हें कितना पुकारा, कितना ढूँढ़ा मगर तुमने जवाब तक नहीं दिया।"

सरदार ने कहा, "चुप चुप चुप रहो। मैं राजा देखने चला गया था।"

यह सुनकर सभी मेंढक एक साथ चिल्लाने लगे, "यह राजा कौन है भैया? यह राजा कौन है?"

बूढ़ा मेंढक तब गाल फुलाकर, छाती फुलाकर दोनों आँखें बन्द करके दोनों हाथ उठाकर उछलता हुआ बोला, "राजा इत्ता बड़ा और ऊँचा होता है। बेहद गोरा तथा चमकदार प्रकाश की तरह...और उसे देखते ही सभी मिलकर उसे पुकारते हैं—राजा, राजा, राजा!"

यह सुनकर सभी मेंढक कहने लगे, "काश हम लोगों का भी कोई राजा होता!" उनका कोई राजा नहीं था। यह सोचते-सोचते उनकी आँख से झर-झर आँसू बहने लगे।

बूढ़े मेंढक ने कहा, "मेरे भाई, आओ हम सभी राजा के लिए अर्जी दें।" तभी सब मिलकर गोलाई में बैठकर, आसमान की ओर देखते हुए विभिन्न स्वरों में पुकारने लगे, "राजा, राजा, राजा, राजा! राजा, राजा, राजा, राजा—हमें राजा चाहिए, राजा चाहिए, राजा चाहिए, राजा चाहिए।"

मेंढक, तालाब के मेंढक देवता, जो बादलोंवाले दिन वर्षा मेघों को झकझोर कर तालाब में पानी उड़ेलते हैं—उस वक़्त वे आसमान तले चादर ओढ़कर सो रहे थे। अचानक मेंढकों की चीख़-पुकार से उनकी नींद टूट गयी। उन्होंने चारों तरफ़ देखते हुए कहा, "इस वक़्त न पानी बरस रहा है, न आसमान में बादल आये हैं, न उनका कहीं कोई चिह्न नज़र आ रहा है। बच्चो, तुम सब इतना चिल्ला क्यों रहे हो?"

मेंढक बोले, "हमारा कोई राजा नहीं है। हमें राजा चाहिए।"

देवता ने कहा, "यह ले राजा!" यह कहकर उन्होंने एक सूखे पेड़ की डाल को तोड़कर उनके सामने फेंक दिया।

टूटी डाल तालाब के किनारे टेक लगाकर खड़ी रही—उसके सिर पर काफी बड़े-बड़े कुकुरमुत्ते चाँदनी में चमक रहे थे। यह देखकर मेंढकों के उत्साह के क्या कहने! उसके चारों तरफ़ गोलाई में बैठकर वे मौज में आकर गाने लगे, "राजा, राजा, राजा, राजा—राजा, राजा, राजा, राजा!"

इस तरह दो दिन बीते, दस दिन बीते, आख़िरकार एक दिन मेंढक सरदार की पत्नी बोली, "यह कोई राजा है! मेरे पति ने उस दिन जो राजा देखा था, वह इससे बहुत अच्छा था। यह राजा न तो हिलता-डुलता है, न देखता है, न सुनता है...यह राजा नहीं, खाक है।"

तब फिर बूढ़ा मेंढक पेड़ पर चढ़कर बोला, "मेरे भाई लोग, आओ हम सभी निवेदन करें कि हमें एक बढ़िया राजा चाहिए।" सभी मेंढक फिर से गोलाई में बैठकर आसमान की ओर देखते हुए विभिन्न स्वर में पुकारने लगे, "राजा चाहिए, राजा चाहिए...बढ़िया राजा—नया राजा।"

यह सुनकर मेंढक देवता जागकर बोले, "अब क्या बात है? अभी तो उस दिन तुम लोगों को राजा दिया, इस बीच अचानक क्या नयी बात हो गयी?" मेंढकों ने कहा, "यह राजा नहीं,

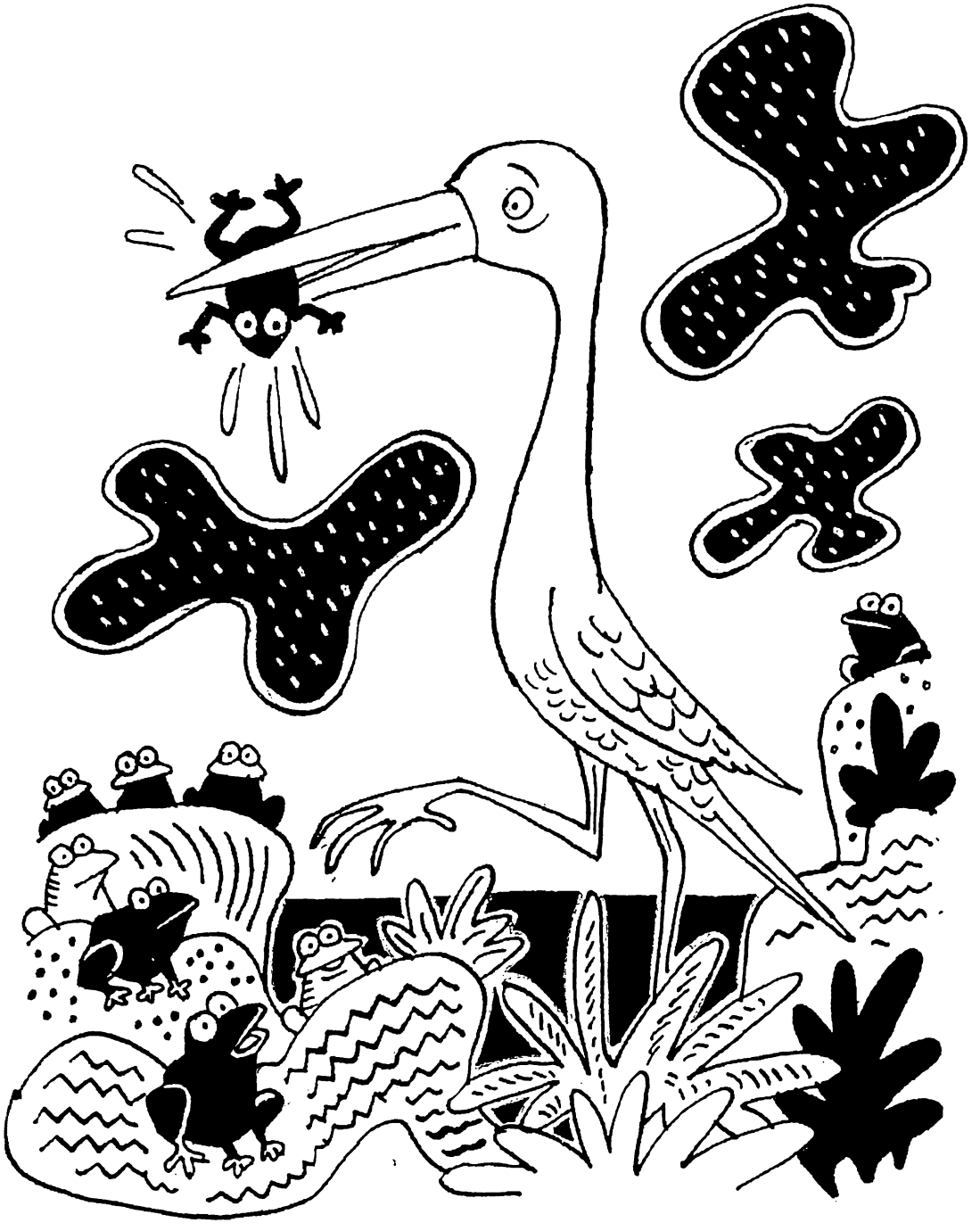

खाक है। यह राजा बदसूरत है। यह न हिलता है, न डुलता है—ऐसा राजा नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, नहीं चाहिए।"

मेंढक देवता बोले, "अब शोर बन्द करो—नया राजा दे रहा हूँ।" यह कहकर एक बगुले को तालाब के किनारे खड़ा करके कहा, "यह लो अपना नया राजा!"

यह देखकर सारे मेंढक चकित होकर कहने लगे, "बाप रे बाप! कितना बड़ा राजा है! कैसा चमकदार गोरा-चिट्टा है। बढ़िया राजा! सुन्दर राजा! राजा, राजा, राजा राजा!" बगुले को उस वक़्त भूख नहीं थी, मछली खाकर उसका पेट भरा हुआ था। इसलिए उसने कुछ नहीं कहा, सिर्फ़ अपनी आँखें मिचमिचाकर एक बार इधर देखा, एक बार उधर देखा, इसके बाद एक टाँग उठाकर चुपचाप खड़ा हो गया। यह देखकर सारे मेंढक और ज़्यादा उत्साहित हो गये, वे दिल खोलकर, गला फाड़कर गाने लगे। इस तरह सुबह बीती, दोपहर बीती, शाम बीती, साँझ भी ढल गयी... इसके बाद चारों तरफ़ रात का अँधेरा छा गया। तब जाकर कहीं मेंढकों का गाना थमा।

उसके दूसरे दिन सुबह-सुबह उठाकर जैसे ही उन्होंने गाना शुरू किया कि तभी बगुला राजा ने आकर एक मोटे-ताज़े मेंढक को अपनी चोंच में लेकर टप्प से निगल लिया। यह देखकर सभी मेंढक अचानक बेहद घबरा गये। राजा की स्तुति में जो गाना वह गा रहे थे, वह आवाज़ एकदम धीमी हो गयी। बगुला राजा मेंढक का जलपान करके एक टाँग उठाकर ध्यान की मुद्रा में खड़ा हो गया।

इसी तरह सुबह-शाम एक-एक मेंढक बगुला राजा के पेट में जाने लगा। मेंढकों की दुनिया में हाहाकार मच गया। सारे मेंढक सभा करके बोले, "यह बड़े अन्याय की बात है। राजा को समझाकर कहने की ज़रूरत है। आख़िर वह हमारा राजा है, अगर वही ऐसा करेगा तो हम कहाँ जाएँगे? मगर उसे समझाए कौन?" मेंढक सरदार की पत्नी बोली, "इसके लिए इतना सोचने की क्या ज़रूरत है? इसमें परेशानी क्या हे? मैं ही जाकर उससे कहे देती हूँ।"

सरदार की पत्नी बगुला राजा के पैरों के पास जमकर बैठ गयी, फिर हाथ-मुँह हिलाकर तेज़ आवाज़ में बोली, "ऐ राजा, तेरा भाग्य अच्छा है कि तू हम लोगों का राजा बना। तेरी आँखें अच्छी हैं, चेहरा अच्छा है, रंग अच्छा है, तेरी एक टाँग भी अच्छी है, दोनों टाँगें भी अच्छी हैं। बस एक ही बात अच्छी नहीं है कि तू हमें खाता क्यों है? घोंघें हैं उन्हें खा, कीड़े-मकोड़े, तितलियाँ इन्हें भी खा सकता है। राजा होकर हमें ही खाना चाहता है? छिः छिः छिः छिः—राम राम राम राम—अब ऐसा कभी मत करना।"

बगुले ने देखा, उसके टाँगों के पास ही एक मोटा-ताज़ा मेढक बैठा है। कितना मुलायम गोल-गोल चेहरा भी है। यह सोचते ही टप्प से बगुले राजा की लार टपक गयी और खप् से सरदार पत्नी उसके मुँह में जाकर ग़ायब हो गयी।

यह देखकर मेंढकों की बोली बन्द हो गयी। सभी एकाएक चुप होकर एक-दूसरे का मुँह

ताकने लगे। फिर मेंढक सरदार रूमाल से अपनी आँखें पोंछकर बोला, "पाजी राजा! हतभागा दुष्ट राजा!"

यह सुनकर सभी मेंढक बड़ी ज़ोर से चीख़ने लगे, "पाजी राजा दुष्ट राजा! नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, ऐसा राजा नहीं चाहिए, राजा नहीं चाहिए।"

मेंढक देवता की नींद खुल गयी। वे बोले, "अरे नासपीटो, अब क्या हुआ?"

मेंढकों ने कहा, "बाप रे बाप! बाप रे बाप! कितना दुष्ट राजा है। इसे ले जाओ, ले जाओ, ले जाओ।"

तब मेंढक देवता के 'हुश्श' कहकर उसे भगाते ही वह पंख फैलाकर उड़ गया। उड़ गया। मेंढक अपने-अपने घरों में जाकर कहने लगे, "गेंक गेंक गेंक—बाप बाप बाप—छीः छीः छीः—अब कभी राजा पाने का नाम भी नहीं लेंगे।"

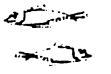

बुद्धिमान शिष्य

एक सन्त थे। उनके अनेक शिष्य थे। सन्त ने अपने पिता के श्राद्ध पर विराट यज्ञ का आयोजन किया। वैसा यज्ञ सन्त के आश्रम में पहले नहीं हुआ था। इसीलिए उन्होंने शिष्यों को बुलाकर कहा, "मैं एक यज्ञ का आयोजन कर रहा हूँ। वैसा यज्ञ शायद तुम लोगों को फिर कभी कहीं देखने को नहीं मिले, इसलिए यज्ञ का सारा काम-धाम, विधि-विधान ख़ूब ध्यान से देखना। अपनी आँखों से अच्छी तरह देखे बिना सिर्फ़ पोथियों के सहारे इस यज्ञ को करना सम्भव नहीं है।"

सन्त के आश्रम में बिल्लियों का बड़ा उत्पात रहता था। यज्ञ की तैयारियों के बीच बिल्लियों ने अपनी हरकतों से नाक में दम कर दिया। कभी वे जूठा कर देती थीं, कभी कोई बर्तन उलट देती थीं। उन्हें सँभालना मुश्किल हो गया। तब सन्त महाराज ने क्रोधित होकर कहा, "इन बिल्लियों को पकड़कर इस कोने में बाँध दो।"

यह सुनते ही सभी नौ बिल्लियों को सभा की एक तरफ़ खूँटियों से बाँध दिया गया। इसके बाद सही मुहूर्त निकालकर यज्ञ प्रारम्भ हुआ। सभी शिष्य यज्ञ सभा की साज-सज्जा, आयोजन, यज्ञ के विधि-विधान, मन्त्रोच्चारण के नियम मन लगाकर देखने और सुनने लगे। बिना किसी बाधा के बहुत सुन्दर ढंग से सन्त महाराज का यज्ञ सम्पन्न हो गया।

कुछ समय बाद उन शिष्यों में से एक के पिता का देहान्त हो गया। उस शिष्य के मन में विचार आया कि वह भी अपने पिता के श्राद्ध में ठीक ऐसे ही यज्ञ का आयोजन करे। उसने अपने गुरु से निवेदन किया। वे बोले, "ठीक है, तुम सारा आयोजन करो, मैं यज्ञ का पुरोहित बनने आ जाऊँगा।" शिष्य बेहद सन्तुष्ट होकर यज्ञ की तैयारियों में जुट गये।

फिर यज्ञ का दिन भी आ गया। सन्त महाराज अपने शिष्यों के साथ श्राद्ध सभा में उपस्थित हो गये। लेकिन उस शिष्य को उस वक़्त भी यज्ञ स्थल में बैठने की फ़ुर्सत नहीं थी। वह बड़ी व्यस्तता से इधर-उधर घूम रहा था। इधर यज्ञ का समय बिलकुल सिर पर आ गया। सन्त महाराज चिन्तित होने लगे। उन्होंने उस शिष्य को बुलाकर पूछा, "अब देर किस बात की है? सारी चीज़ें तैयार हैं, यज्ञ का समय भी हो चला है, अब तुम आकर इस सभा में बैठो।"

शिष्य ने कहा, "एक आयोजन अभी रह गया है, उसी के कारण बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ।"

सन्त ने पूछा, "कहाँ, किसी चीज़ की कमी तो मैं देख नहीं रहा हूँ।"

शिष्य बोला, "जी, अभी चार बिल्लियों का जुगाड़ नहीं हो पाया है।" सन्त ने कहा, "मैं समझा नहीं।"

शिष्य ने घबराई हुई आवाज़ में कहा, "मैंने आपके यज्ञ में ईशान कोण में नौ बिल्लियाँ बँधी देखी थीं। हमारे इस गाँव में काफ़ी ढूँढ़ने पर भी पाँच से ज़्यादा बिल्लियाँ नहीं मिलीं। इसलिए बाक़ी चार बिल्लियों की तलाश में पास के गाँव में लोग गये हैं। वे अभी आते ही होंगे।"

शिष्य की इस बात पर सन्त महाराज बड़े चकित हुए। उन्होंने कहा, "हे बुद्धिमान शिष्य, कौन-सी वस्तु यज्ञ के लिए ज़रूरी है और कौन-सी नहीं, इसे भी विचार करना नहीं सीखा? आश्रम में बिल्लियों के उत्पात के कारण मैंने उन्हें बाँध रखा था। तुम्हारे यहाँ तो कोई उत्पात नहीं है तो फिर जानबूझकर आफ़त क्यों मोल ले रहे हो? अब झटपट यहाँ बैठ जाओ। यहाँ बिल्लियों की कोई ज़रूरत नहीं है। अब यज्ञ-कार्य बिना किसी बाधा के सम्पन्न हो जाए।"

शिष्य अपनी मूर्खता पर लज्जित होकर सिर झुकाकर सभा में बैठ गया।

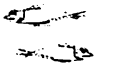

मूर्ख बुढ़िया

एक बूढ़ा था और एक बुढ़िया थी। वे बेहद ग़रीब थे। बुढ़िया बहुत मूर्ख थी। मगर बातें बहुत करती थी। वह कहीं भी किसी से बात करने लगती थी। उसके पेट में कोई बात नहीं पचती थी।

बूढ़े को एक दिन खेत जोतते वक़्त ज़मीन के नीचे एक गगरी मिली, जो रुपयों और मोहरों से भरी थीं। यह देखकर उसे बेहद चिन्ता हुई कि अगर वह इसे यहीं रख जाएगा तो कोई चुरा ले जाएगा और अगर घर ले जाए तो बुढ़िया को पता चल जाएगा और वह सबको बता आएगी। फिर यह बात फैल जाने के बाद राजा का कोतवाल आकर सब कुछ छीन लेगा। सोचते-सोचते उसकी समझ में एक तरीक़ा आया। उसने तय किया कि वह बुढ़िया से सच बात कहेगा। मगर कुछ इस तरह से कि लोग उसकी बातों पर यक़ीन न करें।

वह एक मछली ख़रीद लाया ओर उसे खेत के किनारे पर पेड़ के ऊपर बाँध दिया और एक ख़रगोश लाकर नदी के किनारे एक गड्ढे में जाल से लपेट दिया। इसके बाद उसने जाकर अपनी पत्नी से कहा, "एक बड़े आश्चर्य की ख़बर मैंने सुनी कि पेड़ की डाल पर मछलियाँ उड़ती हैं और ख़रगोश पानी में तैरते हैं।" हमारे ज्योतिषी महाराज कहते हैं—

"मछली बैठी पेड़ पर
नाचे खरहा पानी में।
छिपा ख़ज़ाना चाहो पाना
खोदो उसके पास में॥"

बुढ़िया बोली, "तुम भी कैसी बातें करते हो?"

बूढ़े ने कहा, "वाक़ई ऐसा देखने में आया है।" यह कहकर बूढ़ा काम पर निकल गया।

आधा घण्टा बीतते-न-बीतते ही बूढ़े ने दुबारा लौटकर हड़बड़ाते हुए बुढ़िया से धन प्राप्त होने की बात कही। वे दोनों मिलकर उसे लाने के लिए निकले। रास्ते में चलते-चलते बूढ़े ने उस पेड़ के नीचे आकर कहा, "ज़रा देखो तो पेड़ पर वह क्या चीज़ चमक रही है?" यह कहकर उसने जैसे ही एक ढेला फेंककर मारा वह मछली ज़मीन पर गिर पड़ी।

बुढ़िया हैरान रह गयी। तब बूढ़े ने कहा, "मैंने नदी में जाल फेंका था, ज़रा देख आऊँ उसमें कोई मछली फँसी या नहीं।" फिर वहाँ जाकर जाल खींचते-खींचते वह बोला, "अरे बाप रे, इसमें

तो ख़रगोश फँसा है।" बूढ़े ने आगे पूछा, "क्यों अब भी तुम्हें ज्योतिषी महाराज की बात पर विश्वास नहीं हुआ?"

इसके बाद वे लोग धन से भरी उस गगरी को घर ले आये।

धन पाते ही बुढ़िया बोली, "मैं इससे मकान बनवाऊँगी, गहने गढ़वाऊँगी, कपड़े ख़रीदूँगी।"

बूढ़े ने कहा, "उतावली मत हो। कुछ दिन इन्तज़ार करो। फिर एक-एक करके सभी कुछ हो जाएगा। अचानक सब कुछ एक साथ करने पर लोगों को सन्देह होगा।"

लेकिन बुढ़िया चुप कहाँ बैठनेवाली थी। वह हर मिलनेवाले को यही बात बताने लगी। किसी ने कोतवाल तक यह सूचना पहुँचा दी। कोतवाल के आदेश से बूढ़े को हथकड़ी लगाकर उसके सामने पेश किया गया।

बूढ़े ने सब कुछ सुनकर कहा, "यह क्या कह रहे हैं हुज़ूर! मेरी औरत का दिमाग़ ठीक नहीं रहता। वह ऐसी न जाने क्या-क्या बकवास करती रहती है।"

यह सुनकर कोतवाल ने डाँटते हुए कहा, "झूठे कहीं के, तूने धन पाकर उसे छिपा दिया है और अपनी औरत की शिकायत करता है?" बूढ़े ने कहा, "कैसा धन? मुझे मिला कब? कहाँ से मिला? मुझे तो कुछ भी नहीं पता।"

बुढ़िया बोली, "अच्छा, तो क्या तुम्हें कुछ भी नहीं पता? अरे उस दिन, जब पेड़ की डाल पर मछली बैठी थी, नदी में जाल डालकर तुमने ख़रगोश पकड़ा था, क्या उस दिन की बात तुम्हें याद नहीं? वाह रे नादान!"

उसकी बात सुनकर सभी हँस पड़े। कोतवाल बिगड़कर बुढ़िया से बोला, "जा पगली, घर जा! अगर फिर कभी ऐसी बेहूदी बातें कीं तो तुझे मैं क़ैद में डाल दूँगा।"

बुढ़िया चुपचाप घर लौट आयी। कोतवाल के डर से उसने फिर कभी किसी को धन की बात नहीं बताई।

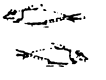

गुड़िया की दावत

गुड़िया की माँ खुकी आज बेहद व्यस्त थी। आज छोटी गुड़िया का जन्मदिन था, इसलिए दावत की धूमधाम थी। छोटी-सी मेज़ पर छोटी-छोटे थालियाँ और कटोरियाँ सजाकर, उसमें बड़े सुन्दर ढंग से भोजन तैयार करके रखा हुआ था। चारों तरफ़ सचमुच की छोटी-छोटी कुर्सियाँ गुड़ियों के खाने के लिए सजाकर रखी हुई थीं।

खुकी के छोटे भैया की उम्र साढ़े चार साल की थी, इसीलिए उसका कहना था, "भला खिलौने की गुड़िया खा सकती है? उसका जन्मदिन क्या मनाना?" मगर खुकी भला कैसे मानती! वह बोली, "खिलौने सब कुछ कर सकते हैं। यह किसने कह दिया कि वे कुछ नहीं कर सकते? यह भी किसने कहा कि वे कभी बात नहीं करते? कभी भी नहीं खाते, जब छोटा गुड्डा बीमार पड़ा था, तब क्या वह 'माँ-माँ' करके नहीं रोता था? ज़रूर रोता था। ऐसा न होता तो मुझे कैसे पता चलता कि वह बीमार थी?"

खुकी के छोटे भैया से इन सवालों का जवाब देते नहीं बना। इसलिए वह 'बेवक़ूफ़ लड़की' कहकर मुँह चिढ़ाकर चला गया।

खुकी अपनी माँ से शिकायत करने गई। माँ सुनकर बोली, "हर समय क्या सभी के सामने खिलौने ज़िन्दा होते हैं? जिस दिन खिलौने की गुड़िया तुझे सचमुच खाते हुए दिखाई दे, उस दिन तू अपने छोटे भैया को बुलाकर दिखा देना।"

खुकी ने कहा, "अगर आज वे जागकर खाना खा लें तो कितना मज़ा आएगा। मुझे लगता है, जब रात में हम लोग सो जाते हैं, तब उनका दिन शुरू होता है। अगर ऐसा न होता तो हम लोगों को अब तक नज़र आ गया होता। उस दिन वह टीन का शैतान गुड्डा जब खाट से गिर गया था तब, वह ज़रूर रात में उठकर मारपीट कर रहा होगा। ऐसा न होता तो वह खाट से कैसे गिरता? आज से मैं सोते समय पूरी तरह से चौकन्नी रहूँगी।"

गुड़िया के जन्मदिन का खाना बड़ा शानदार बना था। मैदे की मिठाई, मैदे का पीठा, नारियल के छोटे-छोटे लड्डू और गुड़ की छोटी-छोटी टिकलियाँ—ऐसी ही सब आश्चर्यजनक चीज़ें थीं। रात में सोते वक़्त खुकी अपने खिलौनों को झाड़-पोंछकर नहला-धुलाकर उन्हें सुलाने के पहले बोली, "यह देख, यहाँ सारा खाना सजाकर रखा हुआ है, रात में उठकर खा लेना।" कौन खिलौना कहाँ बैठेगा, किसके बाद क्या खाना है, झगड़ा करने पर किसे क्या दंड मिलेगा, यह सब

कहने के बाद उस पाजी गुड्डे को डाँटकर, फिर छोटी गुड़िया को उसके जन्मदिन के कारण काफ़ी प्यार करके वह सोने चली गई। आँखें मूँदते ही उसे नींद आ गई।

जैसे ही खुकी सोई, तभी कमरे में न जाने किनके पैरों की टिप-टिप आहट सुनाई पड़ी। उनमें से एक खूकीमणि के जूतों के पास, कमरे के कोने में रखी-तस्वीरों की किताबों के पास, खिलौनों की चद्दर से ढँके खाट के पास घूमने-फिरने लगा, कभी वह इसे सूँघ रहा था। तो कभी उसे, फिर कुटुर-कुटुर करके कुछ चीज़ों को काटने भी लगता। उसने 'वर्ण परिचय' पुस्तक थोड़ी-सी खाकर देखी, उसका स्वाद अच्छा नहीं लगा। जूते का फीता चबाकर देखा, उसमें ज़रा भी रस नहीं मिला। टीन के गुड्डे को काट कर देखा, अरे बाप रे, कितना सख़्त था! तभी अँधेरे में अचानक उसकी मेज़ पर रखी चीज़ों पर नज़र पड़ी, यह सब क्या है भाई।

वह दौड़कर कुर्सियों को उलट कर, एक छलांग में मेज़ पर चढ़कर, उन्हें ज़रा-सा सूँघते ही चीख़ पड़ा, "किच-किच-की-च, मतलब अरे ज़रा इधर आकर देखो।" यह सुनते ही टिप-टिप, टुप-टुप, टाप-टाप, थप करके वैसा ही एक और हाज़िर हुआ। ठीक वैसी ही रोएँदार राख रंग की देह, वैसी ही पतली लम्बी दुम, वैसी ही तीखी और पलकें झपकाती काली-काली आँखें। उन दोनों का उत्साह देखने लायक़ था। वे टपाटप-टपाटप खाने लगे और अपनी भाषा में कहने लगे, "इसे खाओ, ज़रा उसे खाओ! यह कितना मीठा है, वह कितना बढ़िया है!" यह कहकर वे देखते-देखते सारा खाना चटकर गए।

सुबह खुकी ने उठकर देखा—अरे, यह तो बड़े आश्चर्य की बात थी। सारा खाना ख़त्म हो गया था। कब वे सारे खिलौने जागे, कब खाए और कब सोए, उसे बिलकुल पता ही नहीं चला। 'खा लिया, खा लिया, सारा खाना खा लिया', कहकर वह ऐसा शोर मचाने लगी कि माँ, पिताजी, छोटे भैया, बड़े भैया सभी वहाँ भागे-भागे चले आए।

वहाँ का हाल देखकर और खुकी की बात सुनकर सभी ने कहा, "अरे हाँ! बड़े आश्चर्य की बात है।" सिर्फ़ छोटे भैया ने कहा, "बहुत ख़ूब! ख़ुद खाकर कह रही है कि गुड़ियों ने खा लिया। बड़े अन्याय की बात है।"

असली बात सिर्फ़ माँ और पिताजी जानते थे, क्योंकि उन्हें कमरे के कोने में चूहों के पैरों के नन्हें निशान नज़र आ गए थे। मगर यह बात खुकी से कहने पर भला वह यक़ीन करती?

छाते का मालिक

वे सब कुल डेढ़ बित्ते के ही थे। वे सब गाँव, खेत-खलिहान आदि से काफ़ी दूर जंगल के किनारे कुकुरमुत्ते, जिन्हें वे 'मेंढक का छाता' कहते थे, की छाँह में रहते थे। बचपन में जब उनके दाँत भी नहीं निकले थे तभी से वे लोग बाबा आदम के ज़माने के उस मेंढक के छाते को देखते आए थे। वह किस मेढक का छाता था, इसे कोई नहीं जानता था, मगर सभी उसे 'मेढक का छाता' कहते थे।

रात में जिन शरारती लड़कों को नींद नहीं आती थी, उन्हें अपनी माताओं से छाते का गाना सुनकर नींद आ जाती थी—

फूले गाल मोटा मेंढक पालदार लाला छाता
मटिहा मेंढक, झाड़ मेंढक, फटा छाता टूटा छाता।
हरा रंग है जबरजंग, ज़री का छाता सोना मेंढक,
पत्ता टोपी पोपला छाता, छोटा सिर कोना मेंढक ॥
...इत्ते सारे छाते!

मगर आज तक उन्होंने कभी मेंढक नहीं देखा था। वहाँ पर मैदान में घास में हरे रंग के पागल टिड्डे रह-रहकर भुड़क से उन्हें लाँघकर निकाल जाते थे। वहाँ रंग-बिरंगी तितलियाँ थीं, जो काफ़ी देर बैठकर फिर उड़ जाती थीं। वहाँ गिलहरियाँ दिनभर कभी इस पेड़ का नाप लेती थी, कभी उस पेड़ को नापती थीं। दिनभर वे पेड़ पर चढ़ती-उतरती रहती थीं, फिर धूप में बैठकर हिसाब करती थीं और मूँछों पर ताव देती थीं। मगर उनमें से किसी को भी मेंढक के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

गाँव के बूढ़े-बूढ़ियाँ, नानी-दादी आदि कहती थीं कि आज भी वह मेंढक ज़िन्दा है और वह अपने छाते की बात भूला नहीं है। जब आसमान में बादल उमड़ते-घुमड़ते हैं, वन-जंगल में लोग नहीं आते हैं, तब वह मेंढक अपने छाते के नीचे बैठकर बादलों से बहस करता है। जब निस्तब्ध रात में सभी सो जाते हैं, किसी के देखने का डर नहीं रहता, तब मेंढक आकर अपने छाते के नीचे पैर फैलाए बैठकर, सीना फुलाकर संगीत छेड़ता है—'देख देख देख, ज़रा-सा देख।' लेकिन जिस दिन शरारती लड़के पानी में भींगते हुए उसे देखने गए, उनमें से किसी को भी वह मेंढक नज़र

नहीं आया। और जब उस बार रात के सन्नाटे में वे बड़ी आशा से उसकी तान सुनने के लिए कान लगाए बैठे थे, तब उन्हें किसी के गाने की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ी।

मगर जब छाता मौजूद था, तब मेंढक अगर आएगा नहीं तो जाएगा कहाँ? एक-न-एक दिन तो उसे आना ही है। जब वह पूछेगा, "मेरा छाता कहाँ है?" तब वे लोग कहेंगे, "यह तुम्हारे बाबा आदम के ज़माने का नया छाता रहा—ले जाओ! हम लोगों ने इसे न तोड़ा है, न फाड़ा है, न बिगाड़ा है, न गन्दा किया है, सिर्फ़ इसके नीचे बैठकर बातें की हैं।" मगर न मेंढक आता है, न उसका छाता हटता है, न उसकी छाया हिलती है और न बातें ख़त्म होती हैं।

इसी तरह दिन बीतते रहे, साल बीतता रहा। अचानक एक दिन सुबह पूरे गाँव में शोर मच गया, "मेंढक आ गया, मेंढक आ गया, अपना छाता लेने मेढक आ गया।"

मगर वह कहाँ था? उसे किसने देखा? जंगल के किनारे छाते के नीचे लालू ने देखा है, कालू ने देखा है, चाँदा-भोंदा सभी ने देखा है। मेंढक वहाँ क्या कर रहा है? वह देखने में कैसा है?

लालू ने कहा, "ईंटों जैसा लाल रंग है—जैसे हल्दी में घुली चूने की डली, एक आँख बन्द एक आँख खुली।"

कालू ने कहा, "राख जैसा उसका फीका रंग, एक आँख खुली एक आँख बन्द।"

चाँदा बोला, "चटक हरा—जैसे नई कोमल घास, एक आँख खुली, बन्द एक आँख।"

भोंदा बोला, "भूसे जैसा रंग-जैसे पुरानी हो इमली, एक आँख बन्द एक आँख खुली।"

गाँव के जितने बूढ़े थे, जितने महा-महापंडित थे, सभी ने कहा, "किसी की बात से किसी का मेल नहीं है। तुम लोगों ने जो देखा है, उसे फिर से कहो।"

लालू, कालू, चाँदा, भोंदा सभी ने कहा, "छाते के नीचे, ज़िन्दा मेढक, चार हाथों और लम्बी दुमवाला।" यह सुनकर सभी ने सिर हिलाकर कहा, "उँ हूँ, उँ हूँ, यह मेंढक नहीं हो सकता। लगता है मेंढक का बच्चा है। नहीं तो फिर इसकी दुम क्यों है?"

ख़ैर कोई बात नहीं, मेंढक का बच्चा तो है—बेटा न हो, पोता होगा या भतीजा होगा या उसका कोई रिश्तेदार तो होगा ही। सभी ने कहा, "चल चल, देखने चल, देखने चल।" सभी उधर ही भागे।

खेत-खलिहान के पार, जंगल के किनारे, मेंढक के छाते के नीचे कोई बैठकर धूप सेंक रहा था। उसका रंग जैसे कोई लगे पेड़ के तने जैसा था, उसकी दुम घास पर पड़ी हुई थी, वह एक आँख मूँदे एक आँख खोले देख रहा था। यह देखकर सभी चिल्लाकर बोले, "तुम कौन हो भाई? कस्त्वम्? हू आर यू?" यह सुनकर न उसने बाईं ओर देखा न दाईं ओर, सिर्फ़ एक बार अपना रंग बदलकर उसने खुली आँख मूँदी और मूँदी आँख खोली और झट से एक हाथ लम्बी जीभ निकालकर उसे तुरन्त समेट लिया।

गाँव के सबसे सम्भ्रान्त बूढ़े ने कहा, "प्रधान भाई, यह तो कोई जवाब ही नहीं देता। बहरा है क्या?"

प्रधान बोला, "हो भी सकता है।"

बूढ़े सरदार ने साहस करके कहा, "चलो भाई, ज़रा आगे चलें। उसके पास जाकर ज़ोर से कहें।" प्रधान बोला, "तुमने ठीक कहा।" शालीन बूढ़े ने कहा, "तुम लोग जाओ! मैं इस झाड़ी में भाला लेकर छिपकर बैठता हूँ। अगर वह नुक़सान पहुँचाने की कोशिश करेगा तो इस भाले को भोंक दूँगा।"

बूढ़े सरदार ने उस छाते पर चढ़कर उसके कान के पास अचानक बड़ी ज़ोर से पूछा, "कौन है?" अपनी हरकत से वह ख़ुद ही छाते से गिरनेवाला था। उसने अपने को सँभाल लिया। उधर उसकी आवाज़ सुनकर चौंककर वह जानवर थोड़ी देर स्तब्ध रहा। फिर दोनों आँखों खोलकर बोला, "ओफ़, इतना चीख़ते क्यों हैं महाशय जी, मैं क्या बहरा हूँ?" यह सुनकर सरदार ने अपनी आवाज़ धीरे करके कहा, "तुम क्या मेंढक के कुछ लगते हो?" उस जानवर ने कहा, "ना ना ना ना, कोई नहीं, कोई नहीं।" इसके बाद वह अपनी दोनों आँखें मूँदकर बड़ी ज़ोर से हिलने लगा।

यह देखकर बूढ़े सरदार ने चिल्लाकर पूछा, "मगर तुम तो इस छाते को लेने आए हो।" तभी सभी एक साथ चिल्लाने लगे, "उतर आओ, उतर आओ, वहाँ से झटपट उतरकर चले आओ।" प्रधान सरदार लपककर उसकी दुम पकड़कर जी-जान से खींचने लगा। और शालीन बूढ़े ने झाड़ी में बैठे-बैठे अपना भाला तान लिया। दुमवाले जानवर ने खीझकर कहा, "बड़ी आफ़त है! महाशय जी, मेरी दुम पकड़कर इतना क्यों खींच रहे हैं? उखड़ जाएगी न।" सरदार ने पूछा, "तब तुम छाते पर चढ़कर उसे रौंद क्यों रहे हो?" तब वह जानवर अपनी गोल आँखों से आसमान को कुछ देर तक ताकने के बाद बोला, "क्या कहा? आप कहना क्या चाहते हैं?"

सरदार ने कहा, "हम तो मेंढक के छाते की बात कर रहे हैं।"

जैसे ही उसके कानों में यह बात पड़ी वह खिक् खिक् खिक् कर हँसता हुआ लोट-पोट होने लगा। उसके बदन पर नीला, पीला, हरा, इन्द्रधनुषी जैसे विभिन्न रंग अपनी छटा दिख़ाने लगे। सभी घबड़ाकर भागे-भागे आए, "क्या हुआ, क्या हुआ?" किसी ने कहा, "इसे पानी पिलाओ।" किसी ने कहा, "इसे पंखा झलो।" काफ़ी देर बाद उस जानवर ने शान्त होकर, ठीक से बैठते हुए कहा, "मेंढक का छाता क्या होता है? यह क्या मेंढक का छाता है? तुम लोगों की भी कैसी अक़्ल है। न यह छाता है, न किसी मेंढक से इसका सम्बन्ध है। बेवक़ूफ़ ही इसे मेंढक का छाता कहते हैं।"

यह सुनकर किसी से कुछ कहते नहीं बना। सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। आख़िरकार छोकरे जैसे किसी ने पूछा, "महाशय, आप कौन हैं?"

दुमवाले उस जानवर ने कहा, "मैं बहुरूपी हूँ। गिरगिट का चचेरा भाई! गोसाँप की जाति का हूँ। यह चीज़ अब मेरी है। मैं इसे घर ले जाऊँगा।"

इतना कहकर वह मेंढक के छाते को बग़ल में दबाकर, बड़ी गम्भीरता से चला गया।

सभी मुँह बाए देखते रहे।

दान का हिसाब

एक था राजा। राजा जी लक़दक़ कपड़े पहनकर यूँ तो लाखों रुपये ख़र्च करते रहते थे, पर दान के वक़्त उनकी मुट्ठी बन्द हो जाती थी।

राजसभा में एक-से-एक नामी-दानी लोग आते रहते थे, लेकिन ग़रीब, दुःखी, पंडित, सज्जन इनमें से कोई भी नहीं आता था। क्योंकि वहाँ पर गुणियों का सत्कार नहीं होता था। धेलेभर भीख भी नहीं मिलती थी।

एक बार उस राज में अकाल पड़ गया। पूर्व सीमा के लोग बिना खाए मरने लगे। राजा के पास ख़बर आई। वे बोले, "यह तो भगवान की मार है, इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है।"

लोगों ने कहा, "राजभंडार से सहायता करने का हुक्म देने की कृपा करें, जिससे हम लोग दूर से भी चावल ख़रीदकर अपनी जान बचा सकें।"

राजा बोले, "आज तुम लोग अकाल से पीड़ित हो, कल पता चलेगा, कहीं भूकंप आया है। परसों सुनूँगा, कहीं के लोग बड़े ग़रीब हैं, दो वक़्त की रोटी नहीं जुटती। इस तरह सभी की सहायता करते-करते जब राजभंडार ख़त्म हो जाएगा तब खुद में ही दिवालिया हो जाऊँगा।"

यह सुनकर सभी निराश होकर लौट गए।

इधर अकाल का प्रकोप फैलता ही जा रहा था। न जाने रोज़ कितने ही लोग भूख से मरने लगे। दूत फिर राजा के पास हाज़िर हुआ। उसने राजसभा में गुहार लगाई, "दुहाई महाराज! आपसे ज़्यादा नहीं चाहते, सिर्फ़ दस हज़ार रुपये उन्हें दे दें तो वे आधा पेट खाकर भी ज़िन्दा रह जाएँगे।"

राजा बोले, "उतने कष्ट से जीवित रहकर क्या लाभ? और दस हज़ार रुपये भी क्या तुम्हें बहुत सहज लग रहे हैं?"

दूत बोला, "भगवान की कृपा से करोड़ों रुपये राजकोष में मौजूद हैं। जैसे धन का सागर हो। उसमें से एक-आध लोटा ले लेने से महाराज का क्या नुक़सान हो जाएगा!"

राजा बोले, "पर्याप्त धन रहने पर क्या उसे दोनों हाथों से लुटा देना चाहिए?"

दूत ने कहा, "प्रतिदिन के इन सुगन्धित वस्त्रों, मनोरंजन और महल की सजावट में ख़र्च होनेवाले रुपयों में से थोड़ा-सा मिल जाने पर उन अभागों की जान बच जाएगी।"

यह सुनकर राजा को क्रोध आ गया। बोले, "ख़ुद भिखारी होकर मुझे उपदेश दे रहे हो? मेरा रुपया है, मैं चाहे उबालकर खाऊँ सारी तकलीफ़ सहकर, मेरी ख़ुशी। तुम अगर इसी तरह बकवास करोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। इसलिए इस वक़्त तुम चुपचाप खिसक जाओ।"

राजा का मिज़ाज देखकर दूत वहाँ से चला गया।

राजा हँसते हुए बोले, "छोटे मुँह बड़ी बात। अगर दो सौ, पाँच सौ रुपये होते तो एक बार सोच भी सकता था, पहरेदारों की ख़ुराक से दो-चार दिन काटने पर यह रक़म पूरी भी हो सकती थी। मगर इतने से उनका पेट नहीं भरेगा, एकदम दस हज़ार हाँक बैठा। छोटे लोगों के मारे नाक में दम है।"

यह सुनकर वहाँ उपस्थित लोग हाँ-हूँ कहकर रह गए। मगर मन-ही-मन उन्होंने भी सोचा, "छिः छिः राजा ने यह ठीक नहीं किया।"

दो दिन बाद न जाने कहाँ से एक बूढ़ा संन्यासी आकर राजसभा में हाज़िर हुआ। उसने राजा को आशीर्वाद देते हुए कहा, "दाता कर्ण महाराज! फ़क़ीर की भिक्षा पूर्ण कर दें।"

राजा बोले, "ज़रा पता तो चले तुम्हें क्या चाहिए? थोड़ा कम माँगने पर शायद मिल भी जाए।"

संन्यासी बोले, "मैं फ़क़ीर आदमी हूँ, मुझे ज़्यादा देकर होगा क्या? मैं राजकोष से महीने भर तक बहुत मामूली भिक्षा प्रतिदिन लेना चाहता हूँ।" मेरा भिक्षा लेने का नियम इस प्रकार है, "मैं पहले दिन जो लेता हूँ, दूसरे दिन उसका दुगुना, फिर तीसरे दिन उसका दुगुना, फिर चौथे दिन तीसरे दिन का दुगुना। इसी तरह से प्रतिदिन दुगुना लेता जाता हूँ। भिक्षा लेने का मेरा यही तरीक़ा है।"

राजा बोले, "यह तो समझ गया। मगर पहले दिन कितना लेंगे, यही असली बात है। दो-चार रुपयों से पेट भर जाए तो अच्छी बात है, मगर एकदम से बीस-पचास हाँकने लगें, तब तो काफ़ी बड़ी रक़म हो जाएगी।"

संन्यासी हँसते हुए बोले, "महाराज फ़क़ीर भला लोभी होता है? मैं तो बीस-पचास की कौन कहे, दो-चार रुपये भी नहीं माँगता। आज मुझे एक पैसा दीजिए, फिर उनतीस दिन तक दुगुने करके देते रहने का हुक्म दीजिए।"

यह सुनकर राजा, मन्त्री, मुसाहिब सभी की जान में जान आई। तुरन्त हुक्म दे दिया कि संन्यासी ठाकुर के हिसाब के अनुसार एक महीने तक राजकोष से उन्हें भिक्षा दी जाती रहे।

संन्यासी महाराज की जय-जयकार करते हुए घर लौटे।

राजा के आदेशानुसार राज भंडारी प्रतिदिन हिसाब करके संन्यासी को भिक्षा देने लगे। इस तरह दो-दिन बीते, दस दिन बीते। दो सप्ताह तक भिक्षा देने के बाद भंडारी ने हिसाब करके देखा कि भीख में काफ़ी दान निकला जा रहा है। यह देखकर उन्हें उलझन महसूस होने लगी। महाराज

तो कभी किसी को इतना दान नहीं देते थे। उसने यह बात मन्त्री को बताई।

मन्त्री बोले, "वाक़ई, यह बात तो पहले ध्यान में ही नहीं आई थी। मगर अब कोई उपाय भी नहीं है। महाराज का हुक्म बदला नहीं जा सकता।"

इसके बाद फिर कुछ दिन बीते। भंडारी फिर हड़बड़ाता हुआ मन्त्री के पास पूरा हिसाब लेकर आ गया। हिसाब देखकर मन्त्री का चेहरा उतर गया।

वे अपना पसीना पोंछकर, सिर खुजलाकर, दाढ़ी में हाथ फेरते हुए बोले, "यह क्या कह रहे हो! अभी इतना? तो फिर महीने के अन्त में कितने रुपये होंगे?"

भंडारी बोला, "जी, पूरा हिसाब तो नहीं किया है।"

मन्त्री बोले, "भागकर जाओ, अभी ख़ज़ाची से पूरा हिसाब निकलवाकर ले आओ।"

भंडारी हाँफता हुआ भागा, "मन्त्री महाशय अपने माथे पर बर्फ़ की पट्टी लगाकर तेज़ी से पंखा झलवाने लगे।"

आधा घंटा भी नहीं हुआ था कि भंडारी काँपते हुए पूरा हिसाब लेकर आ गया।

मन्त्री ने पूछा, "कुल मिलाकर कितना हुआ?"

भंडारी ने हाथ जोड़कर कहा, "जी, एक करोड़ सड़सठ लाख, सतहत्तर हज़ार, दो सौ पन्द्रह रुपये, पन्द्रह आने और तीन पैसे।"

मन्त्री गुस्से में बोले, "मज़ाक़ कर रहे हो?"

भंडारी ने कहा, "मज़ाक़ क्यों करूँगा? आप ही हिसाब देख लीजिए।"

यह कहकर उसने हिसाब का काग़ज़ मन्त्री जी को दे दिया। मन्त्री महाशय हिसाब देखकर आँखें उलटकर मूर्च्छित होने को हुए। सभी उन्हें सँभालकर बड़ी मुश्किलों से राजा के पास ले आए।

राजा ने पूछा, "बात क्या है?"

मन्त्री बोले, "महाराज, राजकोष से क़रीब दो करोड़ रुपयों का नुक़सान होने जा रहा है।"

राजा ने पूछा, "यह कैसे?" मन्त्री बोले, "महाराज, संन्यासी ठाकुर को आपने भिक्षा देने का हुक्म दिया है। मगर अब देख रहा हूँ उन्होंने इस तरह राजकोष से क़रीब दो करोड़ रुपये झटकने का उपाय कर लिया है।"

राजा बोले, "इतने रुपये देने का हुक्म तो नहीं हुआ था। तब इस तरह का बे-हुक्म काम क्यों किया? भंडारी को बुलाओ।"

मन्त्री ने कहा, "जी सब कुछ आपके हुक्म के अनुसार ही हुआ है। आप खुद ही दान का हिसाब देख लीजिए।"

राजा ने उसे एक बार देखा, दो बार देखा, इसके बाद वे तड़पते हुए बेहोश हो गए। काफ़ी कोशिशों के बाद उनके होश में आ जाने पर लोग संन्यासी ठाकुर को बुलाने दौड़े।

सारा हिसाब इस प्रकार था—

पहला दिन	1 पैसा	16वाँ दिन	512 रुपये
दूसरा दिन	2 पैसे	17वाँ दिन	1024 रुपये
तीसरा दिन	1 आना	18वाँ दिन	2048 रुपये
चौथा दिन	2 आने	19वाँ दिन	4096 रुपये
पाँचवाँ दिन	4 आने	20वाँ दिन	8192 रुपये
छठा दिन	8 आने	21वाँ दिन	16384 रुपये
सातवाँ दिन	1 रुपया	22वाँ दिन	32768 रुपये
आठवाँ दिन	2 रुपये	23वाँ दिन	65536 रुपये
नवाँ दिन	4 रुपये	24वाँ दिन	131072 रुपये
दसवाँ दिन	8 रुपये	25वाँ दिन	262144 रुपये
11वाँ दिन	18 रुपये	26वाँ दिन	524288 रुपये
12वाँ दिन	32 रुपये	27वाँ दिन	1048576 रुपये
13वाँ दिन	64 रुपये	28वाँ दिन	2097152 रुपये
14वाँ दिन	128 रुपये	29वाँ दिन	4194304 रुपये
15वाँ दिन	256 रुपये	30वाँ दिन	8388608 रुपये
		कुल	1,67,77,215 रुपये
			15 आने, 3 पैसे

संन्यासी के आते ही राजा रोते हुए उनके पैरों पर गिर पड़े। बोले, "दुहाई है ठाकुर, मुझे इस तरह जान-माल से मत मारिए। जैसे भी हो एक समझौता करके मुझे वचन से मुक्त कर दीजिए।"

संन्यासी ठाकुर गम्भीर होकर बोले, "इस राज्य में लोग अकाल से मर रहे हैं, उनके लिए पचास हज़ार रुपये चाहिए। वह रुपया नक़द मिलते ही मैं समझूँगा मुझे मेरी भिक्षा मिल गई है।"

राजा ने कहा, "उस दिन एक आदमी ने मुझसे कहा था कि दस हज़ार रुपये ही बहुत होंगे।"

संन्यासी बोले, "मगर आज मैं कहता हूँ कि पचास हज़ार से एक पैसा कम नहीं लूँगा।"

राजा गिड़गिड़ाए, मन्त्री गिड़गिड़ाए, वजीर-नाज़िर सभी गिड़गिड़ाए। आँसुओं की वहाँ बाढ़ आ गई, मगर संन्यासी अपने वचन से ज़रा भी नहीं डिगे। आख़िरकार लाचार होकर राजकोष से नक़द पचास हज़ार रुपये संन्यासी को गिनकर देने के बाद ही राजा की जान बची।

पूरे देश में ख़बर फैल गई कि अकाल के कारण राजकोष से पचास हज़ार रुपये राहत में दिए गए हैं। सभी ने कहा, "हमारे महाराज कर्ण जैसे ही दानी हैं।"

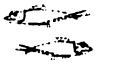

पगला दासू

हमारे स्कूल के छात्रों में ऐसा कोई भी नहीं था, जो पगला दासू को नहीं जानता हो। स्कूल में कोई किसी और को भले ही न पहचाने पर पगला दासू को ज़रूर पहचान लेता था। उस बार एक नया दरबान आया था। एकदम कोरा, देहाती लेकिन पहली बार जब उसने पगला दासू का नाम सुना, तभी उसने सही अन्दाज़ लगा लिया कि यही पगला दासू है। क्योंकि उसके चेहरे, बातचीत, चाल-ढाल से पता चल जाता कि उसके दिमाग़ में कुछ गड़बड़ है। उसकी आँखों बिलकुल गोल थीं, उसके कान अस्वाभाविक रूप से बड़े थे और उसके सिर के बाल घुँघराले थे। उसे देखकर लगता था...

"क्षीण देह, क़द नाटा जिस पर सिर अति भारी
कछार की कई मछली-सा मानव शरीरधारी।"

जब वह तेज़ चलता था अथवा तेज़ी से बात करता था, तब उसके अंग-संचालन को देखकर न जाने क्यों झींगा मछली याद आने लगती।

ऐसा नहीं कि वह बेवक़ूफ़ था। गणित लगाते समय, विशेषकर काफ़ी बड़े-बड़े गुणा-भाग का हल करते वक़्त उसका दिमाग़ आश्चर्यजनक रूप से तेज़ चलता था। इसके अलावा कभी-कभी वह हम लोगों को मूर्ख बनाने के लिए ऐसी चाल चलता कि हमलोग उसकी अक़्ल पर हैरान हो जाते थे।

दासू यानी दासरथी जब पहले-पहल हमारे स्कूल में भर्ती हुआ, तब तक जगबन्धु को अपनी कक्षा का सबसे अच्छा विद्यार्थी समझा जाता था। पढ़ाई में अच्छा होते हुए भी उसके जैसा ईर्ष्यालु 'भींगी बिल्ली' हम लोगों ने नहीं देखा था। दासू एक दिन जगबन्धु के पास एक अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ समझने गया था।

जगबन्धु ने उसे नाहक जली-कटी सुनाते हुए कहा, "मुझे क्या कोई और काम नहीं है? आज किसी को अंग्रेज़ी समझाऊँ, कल किसी का सवाल हल कर दूँ, परसों काई और फ़र्माइश लेकर चला आएगा...बस यही करता रहूँ। दासू ने भी बिगड़कर कहा, "तुम तो बड़े बड़े पाजी, छोटे दिलवाले हो।" जगबन्धु ने पंडित जी से शिकायत की, "यह नया लड़का मुझे गाली दे रहा है।" पंडित जी ने दासू को ऐसा डाँटा कि बेचारा चुप हो गया।

हमें अंग्रेज़ी बिट्टू बाबू पढ़ाते थे। जगबन्धु उनका प्रिय छात्र था। पढ़ाते वक़्त जब उन्हें पुस्तक की ज़रूरत पड़ती थी, वे उसे जगबन्धु से ले लेते थे। एक दिन उन्होंने पढ़ाते समय व्याकरण की किताब माँगी, जगबन्धु ने झटपट अपनी हरे जिल्दवाली अंग्रेज़ी व्याकरण की किताब उन्हें दे दी।

मास्टर साहब ने किताब खोलते ही अचानक गम्भीर होकर पूछा, "यह किताब किसकी है?"

जगबन्धु ने सीना तानकर कहा, "मेरी है।"

मास्टर साहब बोले, "हूँ, शायद नया संस्करण है? पूरी किताब ही एकदम बदल गई है।" यह कहकर वे पढ़ने लगे, "यशवन्त दरोग़ा...सनसनीख़ेज जासूसी नाटक़।" जगबन्धु समझ न पाने के कारण बेवक़ूफ़ों की तरह ताकने लगा।"

मास्टर साहब बहुत नाराज़ होकर बोले, "अब यही सब फ़ालतू चीज़ें तुम पढ़ रहे हो?" जगबन्धु ने घबराकर कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन मास्टर साहब ने डाँटते हुए कहा, "अब रहने दो, सफ़ाई देने की ज़रूरत नहीं। बहुत हो गया।" शर्म और अपमान से जगबन्धु के कान लाल हो गए। हम लोग बहुत ख़ुश हुए। बाद में पता चला कि यह दासू भैया की शरारत थी। उसने मज़ा लेने के लिए उपक्रमणिका की जगह ठीक ऐसी ही जिल्दवाली किताब रख दी थी।

दासू को लेकर हम लोग हमेशा ही हँसी मज़ाक़ करते थे और उसके सामने ही उसकी बुद्धि और चेहरे के बारे में कटु आलोचना करते थे। मगर उसे कभी भी बुरा मानते नहीं देखा। कभी-कभी तो वह ख़ुद ही हमारी टीका-टिप्पणियों पर और भी मज़े लेकर अपने बारे में तरह-तरह के क़िस्से सुनाता।

उसने एक दिन कहा, "भाई मेरे मुहल्ले में जब भी किसी को अमावट बनानी होती है, उसे मेरी ज़रूरत पड़ती है। पता है क्यों?" हम लोगों ने पूछा, "शायद तुझे अमावट ख़ूब पसन्द होगी?"

उसने कहा, "नहीं।" वे जब अमावट सुखाने लगते हैं, तब मैं वहाँ छत पर एकाधिक बार अपना चेहरा दिखा आता हूँ। इतने से ही आसपास के सारे कौए घबड़ाकर भाग जाते हैं। फिर किसी को अमावट की रखवाली नहीं करनी पड़ती।"

वह एक दिन अचानक पतलून पहनकर स्कूल में आ गया। ढीले-ढाले पाजामे जैसी पतलून और ग़िलाफ़ की तरह का कोट पहनकर वह बड़ा अजीब-सा लग रहा था। इसे वह ख़ुद भी महसूस कर रहा था। इसे वह बड़े मज़े की बात भी समझ रहा था।

हम लोगों ने उससे पूछा, "आज पतलून पहनकर क्यों आया है?"

दासू हँसता हुआ बोला, "अच्छी तरह अंग्रेज़ी सीख सकूँ इसलिए।"

एक बार वह अपने सिर के बाल मुड़वाकर माथे पर पट्टी बाँधकर कक्षा में आने लगा। इस बात को लेकर मज़ाक़ करते ही वह ख़ुश हो गया। दासू को गाना बिलकुल ही नहीं आता था। उसे सुर-ताल का ज्ञान नहीं था, इसे भी वह बेहतर जानता था। इसके बावजूद जब उस बार इन्स्पेक्टर साहब जाँच के लिए स्कूल में आए, तब वह हमें ख़ुश करने के लिए ज़ोर-ज़ोर से गाने लगा था।

REPORT

अगर हममें से कोई उस दिन वैसा करता तो हमें कड़ा दंड मिलता, मगर दासू को पगला समझने के कारण उसे कोई सज़ा नहीं मिली।

एक बार छुट्टी के बाद दासू एक विचित्र बक्सा बग़ल में दबाकर कक्षा में हाज़िर हुआ। मास्टर साहब ने पूछा, "क्यों दासू, इस बक्से में क्या लाए हो?"

दासू बोला, "जी, मेरा सामान है।" वह सामान क्या हो सकता है, इसे लेकर हममें आपस में बहस छिड़ गई। दासू के पास किताब-कापी, छुरी-पेंसिल सभी तो थीं, तब उसमें और क्या हो सकता था? दासू से पूछने पर उसने सीधे-सीधे कोई जवाब न देकर उस बक्सा को कसकर पकड़ लिया। फिर बोला, "ख़बरदार मेरा बक्सा मत खंगालना।" इसके बाद चाबी से बक्सा को थोड़ा खोलकर उसके भीतर रखी चीज़ देखकर इतमीनान से सिर हिलाकर बुदबुदाते हुए वह हिसाब लगाने लगा। मैंने कौतूहलवश झाँकने की कोशिश की थी कि तभी उस पगले ने हड़बड़ाकर चाबी उल्टी घुमाकर बक्से को बन्द कर दिया।

फिर तो हमारे बीच आपस में ही बहस शुरू हो गई। किसी ने कहा, "वह उसका टिफ़िन का बक्सा है, उसमें खाना रखा होगा। लेकिन उसे टिफिन के वक़्त कभी खोलकर उसमें से खाना निकालते किसी ने नहीं देखा। किसी ने कहा, "शायद यह उसका मनीबैग होगा, उसमें उसके रुपये-पैसे रखे होंगे, इसीलिए वह उसे हमेशा अपने साथ लिए रहता है।"

तभी किसी ने पूछा, "रुपये-पैसों के लिए इतने बड़े बक्से की क्या ज़रूरत? वह क्या स्कूल में महाजनी कारोबार करेगा?"

एक दिन टिफ़िन में दासू अचानक हड़बड़ाकर बक्से की चाबी मुझे देकर जाते हुए बोला, "इसे अभी अपने पास रखो। देखो कहीं खो न जाए। मुझे आने में अगर देर हो जाए तो तुम लोग कक्षा में जाने से पहले इसे दरबान को दे देना।"

यह कहकर दरबान के ज़िम्मे उस बक्से को रखकर वह चला गया। तब हम लोगों का उत्साह देखने लायक़ था। इतने दिनों बाद जाकर अब मौक़ा मिला था। अब दरबान के वहाँ से हटने का इन्तज़ार था। थोड़ी देर बाद दरबान रोटी पकानेवाला अपना लोहे का चूल्हा सुलगाकर, थोड़े बर्तन लेकर नल के पास चला गया। हम लोग इसी मौक़े की तलाश में थे। दरबान के ओझल होते ही हम पाँच-छह लड़के उसके कमरे के पास उस बक्से के चारों ओर सिमट गए। मैंने चाबी से बक्से को खोलकर देखा। उसमें काग़ज़ का भारी गट्ठर कपड़े के टुकड़े से अच्छी तरह लपेटा हुआ था। फटाफट लपेटे हुए कपड़े को खोलकर देखा उसमें एक काग़ज़ का बक्सा था, उसमें एक और छोटी पोटली थी। उसे खोलने पर एक कार्ड मिला, जिस पर लिखा था—'ले अँगूठा!' काई के उल्टी तरफ़ लिखा था, "ज़रूरत से ज़्यादा कौतूहल ठीक नहीं।"

इसे देखकर हम एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। आख़िर में किसी ने कहा, "वह भले ही जो हो, उसने हमें ख़ूब उल्लू बनाया।" एक और ने कहा, "जिस तरह यह बँधा हुआ था, ठीक उसी तरह रख दो, जिससे पता न चले कि हमने इसे खोला था। इससे वह ख़ुद ही धोखा खा जाएगा।"

मैंने कहा, "ठीक है। उसके लौटने के बाद तुम सभी भले लड़कों की तरह इस बक्से को दिखाने के लिए कहना और उसमें क्या है इस बारे में पूछना।" इसके बाद हम सभी जल्दी-जल्दी काग़ज़ों को बाँधकर पहले की तरह गट्ठर में लपेटकर, उसे बक्सा में रखकर ताला लगाने लगे।

बक्से में ताला लगाने जा ही रहा था कि तभी खी-खी करके हँसने की आवाज़ आई। हमने देखा कि चारदीवारी पर पगला दासू बैठकर हँसते-हँसते लोटपोट हो रहा था। बदमाश अभी तक चुपचाप बैठा तमाशा देख रहा था। तब मैं समझ गया कि मुझे चाबी देना, दरबान के पास बक्सा रखना, टिफ़िन के वक़्त बाहर जाने का नाटक करना, यह सब उसकी शैतानी थी। हमें नाहक मूर्ख बनाने के लिए वह यूँ ही कई दिनों से इस बक्से को ढोता फिर रहा था।

हमलोग भला यूँ ही उसे 'पगला दासू' कहते हैं।

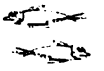

सर्वज्ञ

हम लोगों के सर्वज्ञ यानी दुलीराम के पिता किसी अख़बार के सम्पादक थे। इसीलिए हममें से कइयों को उसकी कही बातों पर अगाध विश्वास रहता था। विषय चाहे जो भी हो, चाहे जर्मनी की लड़ाई हो या मोहन बागान के फ़ुटबॉल के बारे में या फिर अपने देश के बड़े लोगों की घरेलू बातें हों, चाहे विभिन्न विचित्र रोगों का वर्णन, वह हर विषय पर अपनी राय ज़ाहिर करता था। काफ़ी छात्र मुग्ध होकर उसकी बातें सुनते थे। मास्टरों में से भी कुछ लोगों की उसके बारे में अच्छी राय थी। दुनिया की सभी ख़बरों में उसका दख़ल होने के कारण अध्यापक उसे 'सर्वज्ञ' कहते थे। मगर मुझे हमेशा यही लगता कि सर्वज्ञ जितना ज्ञान बघारता रहता था, उसमें से ज़्यादातर उड़नझाईं होती थीं। दो-चार बड़ी-बड़ी सुनी हुई बातें और अख़बारों की पढ़ी थोड़ी-बहुत ख़बरें ही उसकी जमा पूँजी थी, उसी को पॉलिश करके उसमें तरह-तरह की बकवास मिलाकर वह अपना ज्ञान बघारता रहता था।

एक दिन हमारी कक्षा में पंडित जी से वह नियागरा जलप्रपात के बारे में बात कर रहा था। बातों-बातों में उसने कहा, "नियागरा जलप्रपात दस मील ऊँचा है और सौ मील चौड़ा है। किसी छात्र ने पूछा, "यह कैसे सम्भव है? एवरेस्ट सबसे ऊँचा पहाड़ है। उसकी ऊँचाई पाँच मील है।" सर्वज्ञ ने उसे टोकते हुए कहा, "तुम लोग तो ताज़ा ख़बर रखते ही नहीं।" जब भी उसकी किसी बात पर हमलोग सन्देह या आपत्ति करते थे, वह किसी का नाम लेकर हमें डाँटते हुए कहता, "तुम लोग क्या अमुक से ज़्यादा जानते हो?"

हमलोग बाहरी तौर पर सब कुछ सह जाते, मगर कभी-कभी भीतर-ही-भीतर आग लग जाती। सर्वज्ञ हमारे मन की बात नहीं समझता था ऐसा नहीं। वह बिलकुल समझ जाता, मगर हमेशा ऐसा भाव जताए रहता, जैसे कि हम उसकी बात पर यक़ीन करें या न करें, उससे उसका कुछ नहीं बिगड़ने वाला। तरह-तरह की ख़बरें और बातें करते समय वह बीच-बीच में हमें सुनाकर कहता, "हालाँकि ऐसे भी कुछ लोग हैं, जो इन बातों पर यक़ीन नहीं करेंगे।" या फिर "जो लोग बिना पढ़े ही बड़े बुद्धिमान हैं, वे इन बातों को ज़रूर फ़ालतू कहेंगे" इत्यादि। चूँकि उसे काफ़ी ख़बरों की जानकारी रहती थी, साथ ही उसके कहने का ढंग भी प्रभावशाली होता था। इसीलिए हमलोग उससे ज़्यादा उलझने की हिम्मत नहीं कर पाते थे।

इसके बाद एक दिन न जाने किस कुघड़ी में उसके एक मामाजी डिप्टी मजिस्ट्रेट थे, वे हमारे स्कूल के पास ही रहने लगे। तब फिर सर्वज्ञ का कहना क्या! तब वह ऐसी ग़ज़ब की बातें करने

लगा, जिससे लगता था कि उससे सलाह लिये बिना मजिस्ट्रेट से लेकर प्यादे तक का काम नहीं चलता। स्कूल के छात्रों के बीच उसका प्रभाव और उसकी ख़ातिर इतनी बढ़ गई कि हम कई बेचारे जो हमेशा उसका मज़ाक़ उड़ाते आए थे, कहीं के नहीं रहे। यहाँ तक कि हमारे ऐसे साथियों में से दो-एक लोग इसके साथ हो गए।

हमारी हालत आख़िरकार ऐसी हो गई कि हमारा स्कूल में रहना मुश्किल हो गया। हमलोग दस बजने पर गर्दन झुकाकर कक्षा में जाते थे और छुट्टी होते ही दूसरों के तानों से बचने के लिए भागकर घर चले आते थे। टिफ़िन के समय भी हम लोग हेडमास्टर साहब के कमरे के आगे एक बेंच पर बैठकर अच्छे लड़कों की तरह पढ़ते रहते थे।

इसी तरह से कब तक चलता पता नहीं, लेकिन एक दिन की घटना में अचानक सर्वज्ञ महाशय के कारनामे की ऐसी पोल खुली कि उसकी बहुत दिनों की ख्याति मिट्टी में मिल गई और हमलोग भी उस दिन से सिर उठाकर चलने की स्थिति में आ गए। उसी घटना के बारे में बताता हूँ।

एक दिन सुना गया कि लोहारपुर के ज़मींदार रामलाल बाबू ने हमारे स्कूल के फ़ुटबाल मैदान और खेल के सामानों के लिए तीन हज़ार रुपये दिए हैं। यह भी सुना कि रामलाल बाबू चाहते थे कि इस उपलक्ष्य में हम लोगों को एक दिन की छुट्टी मिले और एक दिन जमकर दावत हो। कई दिनों से यह ख़बर ही हमारी बातों का विषय बन गया। कब छुट्टी होगी, कब दावत होगी और उसमें क्या-क्या होगा आदि बातों की हम कल्पना करने लगे। सर्वज्ञ दुलीराम ने कहा कि उस बार जब वह दार्जिलिंग गया था, तब वहाँ उसकी रामलाल बाबू से न केवल भेंट हुई थी, बल्कि अच्छी जान-पहचान भी हो गई थी। रामलाल बाबू ने वहाँ उसकी कैसी ख़ातिरदारी की, उसका कविता पाठ सुनकर प्रशंसा में क्या कहा, इस बारे में वह स्कूल शुरू होने के पहले और बाद में, टिफ़िन के समय और मौक़ा पाने पर कक्षा में पढ़ाई के दौरान भी तरह-तरह की असम्भव बातें बताता। हालाँकि असम्भव शब्द का प्रयोग मैं कर रहा हूँ, मगर उसके चेलों के समूह को इन सभी बातों पर आँख मूँदकर यक़ीन करने में ज़रा भी दिक़्क़त नहीं होती थी।

एक दिन टिफ़िन के समय आँगन की बड़ी सीढ़ी पर सर्वज्ञ ने अपने चेलों के साथ महफ़िल जमा रखी थी। वह कह रहा था...एक दिन मैं दार्जिलिंग में लाट साहब के घर के पास की सड़क पर घूम रहा था, कि तभी मैंने रामलाल बाबू को मुस्कुराते हुए मेरी तरफ़ आते हुए देखा। उनके साथ एक साहब भी थे। रामलाल बाबू ने कहा, "दुलीराम, तुम अपनी वह अंग्रेज़ी कविता एक बार इन्हें भी सुना दो। मैंने इनसे तुम्हारी प्रशंसा की थी, इसीलिए वे तभी से इसे सुनने के लिए उतावले हैं।" जब वे ख़ुद कह रहे थे तो मैं क्या करता? मैंने 'कैसाबियांका' से एक कविता उन्हें सुना दी। देखते-देखते वहाँ भीड़ इकट्ठा हो गई। सभी मेरी कविता सुनना चाहते थे। सभी कह रहे थे, "एक बार और।" मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। चूँकि रामलाल बाबू का आग्रह था, इसलिए मैंने एक बार और सुनाई।

तभी, किसी ने पीछे से पूछा, "रामलाल बाबू कौन हैं?" सबने गर्दन घुमाकर देखा, सीढ़ी पर एक दुबले-पतले निरीह से एक देहाती सज्जन खड़े थे। सर्वज्ञ ने कहा, "रामलाल बाबू को आप नहीं जानते? लोहारपुर के ज़मींदार रामलाल राय।" वे सज्जन कुछ असहज होकर बोले, "हाँ, उनके बारे में सुना है। वे तुम्हारे कुछ लगते हैं क्या?" "ऐसा नहीं, मगर उनसे मेरी ख़ूब जान-पहचान है। अक्सर पत्र-व्यवहार होता रहता है।

उस सज्जन ने फिर पूछा, "रामलाल बाबू कैसे आदमी हैं?"

सर्वज्ञ ने बड़े उत्साह से बताया, "बहुत बढ़िया आदमी हैं। जैसे वे देखने में हैं, वैसी ही बातें भी करते हैं। वैसे ही वे चुस्त-दुरुस्त भी हैं। आपसे क़रीब आधा हाथ लम्बे होंगे और वैसे ही प्रतापी हैं। उन्होंने मुझे कुश्ती सिखाने के लिए कहा था, कुछ दिन और रहने पर उसे पूरी तरह से सीख लेता।"

उन सज्जन ने कहा, "ये क्या कह रहे हो? तुम्हारी उम्र क्या है?" "जी, इस बार तेरह साल का हो गया।" "मगर अपनी उम्र के हिसाब से तुम बहुत चालाक हो। बातों में भी बड़े माहिर हो। तुम्हारा नाम क्या है?" सर्वज्ञ ने बताया, "दुलीराम घोष! रमदा बाबू डिप्टी मजिस्ट्रेट मेरे मामा हैं।" यह सुनकर वे सज्जन प्रसन्न होकर हेडमास्टर साहब के कमरे की ओर चले गए।

छुट्टी के बाद हम सभी बाहर आए। स्कूल के सामने ही डिप्टी साहब का घर था, उनके बाहर के बरामदे में देखा, वे ही सज्जन दुलीराम के डिप्टी मामा के साथ बैठे बात कर रहे थे। दुलीराम को देखते ही मामा ने उसे बुलाकर कहा, "दुली इधर आ, इन्हें प्रणाम कर...यह मेरा भानजा दुलीराम है।" उन सज्जन ने हँसते हुए कहा, "हाँ, इसका परिचय मुझे पहले ही मिल चुका है।" दुलीराम ने हमें दिखाते हुए बड़े भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम किया। उन सज्जन ने पूछा, "क्या तुम मुझे नहीं जानते?" सर्वज्ञ इस बार यह नहीं कह पाया कि जानता हूँ। वह बेवक़ूफ़ों की तरह सिर खुजलाने लगा। वे सज्जन अब बड़े मज़े से मुस्कुराते हुए हमें सुनाते हुए बोले, "मेरा नाम रामलाल बाबू है। लोहारपुर का रामलाल राय।"

दुलीराम कुछ देर मुँह बाए खड़ा रहा। इसके बाद अचानक अपनी स्थिति समझकर घर के अन्दर भाग गया। उसकी पोल खुल जाने से सभी लड़के सड़क पर खिलखिलाकर हँसने लगे।

उसके अगले दिन हम लोगों ने स्कूल में आकर देखा कि सर्वज्ञ उस दिन स्कूल में नहीं आया था। सुना, उसके सिर में दर्द था। तरह-तरह के बहाने बनाकर वह दो-तीन दिनों तक स्कूल आने से बचता रहा। फिर वह जिस दिन स्कूल में आया, उसे देखकर उसके ही कई चेले उससे पूछने लगे, "क्यों भाई, रामलाल बाबू की चिट्ठी मिली?" यह कहते हुए उन्होंने उसे घेर लिया। उसके बाद वह जितने दिनों तक वहाँ रहा, उसे चिढ़ाने के लिए ज़्यादा कुछ कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी, बस एक बार रामलाल बाबू के बारे में पूछना ही काफ़ी होता।

भोलानाथ की सरदारी

हर बात में टाँग अड़ाने की भोलानाथ की बुरी आदत थी। जहाँ उसकी ज़रूरत नहीं होती थी, वहाँ भी वह बड़े जानकार की तरह ज्ञान बघारने लगता था। जिस काम को वह ज़रा भी नहीं समझता था, उस काम में भी बिना सोचे-समझे हाथ लगा देता। इसलिए बुज़ुर्ग उसे 'ताऊ' और हमउम्र उसे 'टँगड़ी राम' कहते थे। लेकिन इससे उसे कोई दुःख नहीं था और न कोई ख़ास शर्म ही थी। उस दिन उससे तीन कक्षा आगे के बड़े लड़के जब अपनी पढ़ाई की चर्चा कर रहे थे, तब भोलानाथ किसी ज्ञानी की तरह गम्भीर होकर बोला, "वेबस्टर से बेहतर कोई शब्दकोश नहीं है। मेरे बड़े भाई ने दो खंडों में जो वेबस्टर शब्दकोश ख़रीदा है, उसका एक-एक खंड इत्ता बड़ा और इत्ता मोटा है। और उसकी जिल्द लाल चमड़े की है।" उनमें से एक छात्र ने उसका कान कसकर हिलाते हुए कहा, "किस तरह का लाल भैया? तुम्हारे इस कान की तरह?" लेकिन भोलानाथ भी कम बेहया नहीं था। वह उसके दूसरे ही दिन उन्हीं के पास जाकर फ़ुटबाल के बारे में जाने क्या अपनी राय देते वक़्त झापड़ खाकर लौटा था।

बिशु के यहाँ एक चूहेदानी थी। भोलानाथ ने अचानक एक दिन 'यह कैसी चीज़ है भाई?' कहकर उसके कल-पुर्जों को ऐसा हिलाया कि वह चूहेदानी ख़राब हो गई। बिशु ने कहा, "बिना जाने-बूझे उससे छेड़छाड़ करने की क्या ज़रूरत थी?" भोलानाथ ने ज़रा भी शर्मिंदा हुए बिना कहा, "इसमें मेरी क्या ग़लती है? देख, इसका हत्था बड़ा वाहियात बना है। उसे और मज़बूत बनाने की ज़रूरत थी। इसे बनानेवाले ने ठग लिया है।"

भोलानाथ पढ़ने-लिखने में अच्छा था, ऐसी बात नहीं, मगर जब मास्टर साहब कठिन-कठिन सवाल पूछते थे, तब वह भले ही जाने या न जाने, सबसे पहले जवाब देने के लिए उतावला रहता था। जवाब ज़्यादातर बेवक़ूफ़ी से भरा होता था, जिसे सुनकर मास्टर साहब उसका मज़ाक़ उड़ाते, लड़के हँसते, मगर भोलानाथ का उत्साह इससे ज़रा भी नहीं कम होता था।

उस बार जब स्कूल में किताबें चोरी होने का हंगामा हुआ, तब भी उसे ऐसी ही सरदारी करते वक़्त ख़ूब भुगतना पड़ा था। हेडमास्टर साहब लगातार किताबें चोरी होने की शिकायतों से तंग आकर, एक दिन हर कक्षा में जाकर पूछने लगे, "इस चोरी के बारे में तुममें से कोई जानता है?" भोलानाथ की कक्षा में जाकर यह सवाल करते ही भोलानाथ ने लपक कर कहा, "जी, मुझे लगता है कि हरिदास का ही इस चोरी में हाथ है।" यह सुनकर हम सभी हैरान हो गए। हेडमास्टर साहब ने पूछा, "तुम्हें कैसे पता कि हरिदास ने चोरी की है?" भोलानाथ ने बड़ी सहजता से कहा,

"मुझे पता नहीं, पर मुझे ऐसा लगता है।"

हेडमास्टर साहब ने उसे डाँटते हुए कहा, "अगर नहीं जानते हो तो फिर ऐसा क्यों कहते हो? इस तरह महसूस होने का ऐसा क्या कारण है?"

भोलानाथ ने फिर कहा, "मुझे ऐसा लगता था कि शायद वही चुराता होगा, इसीलिए ऐसा कहा और तो मैंने कुछ नहीं कहा।"

हेडमास्टर साहब ने गम्भीर होकर कहा, "जाओ, हरिदास से माफ़ी माँगो।" उसे उसी वक़्त अपना कान पकड़कर हरिदास से माफ़ी माँगनी पड़ी। मगर इससे उसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा।

भोलानाथ को तैरना नहीं आता था। इसके बावजूद वह बड़ी बहादुरी से हरीश के भाई को तैरना सिखाने लगा। अचानक रामबाबू उस वक़्त घाट में पहुँच गए थे, इसीलिए जान बच गई, वरना दोनों ही उस दिन घोष पोखर में डूब जाते। कोलकाता में मामा के मना करने के बावजूद चलती ट्राम से कूदने की कोशिश करते वक़्त कीचड़ में ऐसा गिरा कि तीन महीने तक उसकी नाक पर चोट का निशान बना रहा। और उस बार जब बनजारों ने सियार पकड़ने के लिए जाल बिछाया था, उससे छेड़छाड़ करने के चक्कर में भोलानाथ उसमें ऐसा फँसा कि उसे याद करने पर आज भी हँसी आती है। लेकिन सबसे ज़्यादा वह जिस बार बुरा फँसा था, वह घटना इस प्रकार है...

हमारे स्कूल में आने के लिए कालेज की बग़ल से होकर आना पड़ता था। वहाँ एक कमरा था, जिसे लैबोरेटरी कहते थे। उस कमरे में तरह-तरह के विचित्र यन्त्र लगे थे। भोलानाथ तो हर बात में अति उत्साही रहता था। उसने एक बार कॉलेज के अन्दर जाकर देखा कि एक यन्त्र का चक्का घुमाने पर उसके दूसरी तरफ़ चट्-चट् करके बिजली की चिनगारी निकलती थी। यह देखकर भोलानाथ को भी उस यन्त्र को चलाकर देखने की इच्छा हुई। लेकिन उस यन्त्र के पास पहुँचते ही किसी ने उसे ऐसा डाँटा कि वह वहाँ से भागकर हाँफते हुए स्कूल पहुँचा। मगर उस यन्त्र को चलाने की इच्छा उसके मन में बनी ही रही।

एक दिन शाम को जब हम सभी घर लौट रहे थे, उस समय भोलानाथ न जाने कब कॉलेज में घुस गया, हमें पता ही नहीं चला।

उसने दबे पाँव कालेज की लेबोरेटरी या यन्त्रशाला में आकर इधर-उधर देखा, वहाँ देखा, वहाँ कोई नहीं था। तभी बड़े इत्मीनान से वह वहाँ घुसकर यन्त्रों को देखने लगा। उस दिन का वह यन्त्र आलमारी की आड़ में एक ऊँचे आले में रखा हुआ था। वहाँ उसका हाथ नहीं पहुँचा। बड़े कष्ट से वह मेज़ के पीछे से एक बड़ी चौकी ले आया। इधर कॉलेज का कर्मचारी उस कमरे में ताला लगाकर चला गया। न उसने भोलानाथ को देखा, न भोलानाथ ने उसे। चौकी पर खड़े होकर भोलानाथ ने देखा कि उस यन्त्र के पास एक अद्भुत बोतल रखी थी। वह बिजली की बोतल थी, भोलानाथ को यह पता नहीं था। वहाँ से हटाने के लिए उसने बोतल को छुआ। तभी बोतल की बिजली अचानक उसके शरीर में प्रवाहित होने लगी। उसे लगा जैसे उसकी हड्डियों के अन्दर तक जाने कैसा धक्का लगा हो। सिर चकरा जाने से वह गिर पड़ा।

बिजली का धक्का खाकर भोलानाथ कुछ देर तक जड़-सा हो गया। इसके बाद घबड़ाकर

वहाँ से भागते वक़्त उसने पाया दरवाज़ा बाहर से बन्द था। चिटखिनी काफ़ी ऊँचाई पर थीं और वे बाहर से बन्द थीं। चौकी पर चढ़कर भी वहाँ तक नहीं पहुँच सका। वह पसीने-पसीने हो गया। उसने सोचा ज़ोर से चीख़े, शायद किसी को सुनाई पड़ जाए। लेकिन उसके गले से जो ..... आवाज़ निकली और बन्द कमरे में वह ऐसी प्रतिध्वनित हुई कि वह ख़ुद ही डर गया। इधर साँझ ढलने लगी थी। कॉलेज के पीपल के पेड़ पर बैठे एक उल्लू ने अचानक 'भूत-तुम-भूत' की निकट आवाज़ निकाली। उसे सुनकर वह इस बुरी तरह से डर गया कि एक चीख़ मारकर वह बेहोश हो गया।

कॉलेज के दरबान जो हमारे स्कूल के पांडे जी थे, वे अपने गाँव के दो-चार लोगों के साथ बैठकर बड़े उत्साह से झाँझर ढोल बजाकर 'हाँ-हाँ रे कहाँ गए राम' गा रहे थे, इसलिए उन्हें किसी तरह की चीख़ पुकार सुनाई नहीं पड़ी। आधी रात तक उनके कीर्तन का हुल्लड़ चलता रहा। इसलिए होश में आने के बाद जब भोलानाथ दरवाज़े पर धम-धम करते लात मारते हुए चिल्ला रहा था, तब उनकी आवाज़ उनके कीर्तन के बीच-बीच में सुनाई पड़ने के बावजूद उन लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया। पांडेजी ने सिर्फ़ एक बार कहा, "यह कैसा शब्द है, ज़रा देखा जाए।" तो दूसरों ने बाधा देते हुए कहा, "अरे चिल्लाने दो।" ऐसा करके जब रात के बाहर बजे उनका उत्साह मन्द पड़ा कि तभी भोलानाथ के घरवाले भी हाथों में लालटेन लेकर वहाँ पहुँच गए। वे उसे हर घर में ढूँढ़ रहे थे, मगर वह कहीं भी नहीं मिला। पहरेदारों से पूछने पर उन्होंने कहा, "स्कूल के बच्चों में से किसी को भी उन्होंने देखा नहीं है। ठीक तभी उसकी धम-धम की आवाज़ और चीख़-पुकार उन्हें सुनाई पड़ी।"

उसके बाद भोलानाथ का पता लगाने में उन्हें देर नहीं हुई। लेकिन तब भी उसे बाहर नहीं निकाल पाए, क्योंकि दरवाज़े पर ताला लगा हुआ था, जिसकी चाबी गोपाल बाबू के पास थी। वे अपने डेरे में नहीं थे। वे अपनी भतीजी की शादी में चले गए थे और सोमवार को लौटनेवाले थे। लाचार होकर एक सीढ़ी मँगवाकर, खिड़की खोलकर, उसके शीशे तोड़कर काफ़ी हंगामे के बाद अधमरे भोलानाथ को बाहर निकाला गया। वह वहाँ क्या कर रहा था, क्यों आया था, वहाँ कैसे फँस गया जैसी बातें पूछने के लिए भोलानाथ के पिता ने उसे मारने के लिए अपना हाथ उठाया था, मगर भोलानाथ के आतंकित चेहरे को देखकर उन्होंने अपना इरादा बदल दिया।

कई लोगों से पूछने-ताछने के बाद जो सारी बात सामने आई, उसे सुनकर ही मैंने उसके वहाँ फँस जाने का वर्णन किया है। लेकिन उसने हमसे यह सब नहीं कहा था। बल्कि उसने तो उल्टा हमें ही यह समझाना चाहा था कि उसने जानबूझकर बहादुरी के लिए कॉलेज में रात बिताने की कोशिश की थी। मगर जब उसने देखा कि उसकी बात पर कोई विश्वास नहीं कर रहा है, बल्कि असली बात की जानकारी लोगों को होती जा रही है। तब उसका चेहरा ऐसा लटक गया कि कम-से-कम अगले तीन महीने तक वह खुलकर अपनी डींग नहीं हाँक सका।

टोकियो, क्योटो, नागासाकी, योकोहामा—बोर्ड पर एक बहुत बड़ा व्योमकेश का ध्यान कहीं और था।

कल शाम को डॉक्टर साहब के छोटे बेटे के साथ पेंच लड़ाते वक़्त उसकी दो-दो पतंगें कट गई थीं। व्योमकेश इस सदमे से अभी तक उबर नहीं पाया था। इसीलिए वह इस वक़्त कक्षा में बैठा-बैठा पतंग की डोर के लिए एक बढ़िया माँझा बनाने की चिन्ता में डूबा हुआ था। चाइना सरेस गलाकर उसमें पिसा हुआ शीशा और एमरी पाउडर मिलाकर धागे में लेपने से ज़बर्दस्त माँझा तैयार हो जाएगा—यह बात ध्यान में आते ही वह बेहद खुश हो गया। इस तरह तैयार माँझेवाली डोर से उसकी पतंग ताड़ के पेड़ की फुनगी तक पहुँचकर डॉक्टर साहब के बेटे की पतंग को काटने ही वाली थी कि—

ठीक ऐसे ही वक़्त एक गम्भीर आवाज़ उसे सुनाई पड़ी, "इधर आओ व्योमकेश! ज़रा देखूँ तो तुम्हारी खोपड़ी में कितना घुसा है।"

ऐसी उत्तेजना की घड़ी में माँझा, डोर, पतंग का पेंच सब फेंक-फाँककर, व्योमकेश को चीन के मध्य भाग में उतरना पड़ा। एक तो उस देश से उसका ख़ास परिचय नहीं था, उस पर एक-दो नाम जो उसे याद भी थे, अचानक इस तरह पकड़ लिए जाने से सब कुछ गड़बड़ हो गया। पहाड़, नदी, देश, प्रदेश में प्रवेश करते-न-करते बेचारा रास्ता भटक गया। बस उसे केवल यही याद रहा कि चीन के चाइना सरेस से बढ़िया माँझा बनता है।

मास्टर साहब ने एक-दो बार पूछने के बाद जब तीसरी बार डपटकर पूछा, "चीन की प्रमुख नदी के बारे में बताओ।" तब घबराहट में उसके मुँह से निकल गया, 'शंघाई।' शंघाई याद रहने का कोई ख़ास कारण नहीं था। शायद उसके मामा के पास टिकट संग्रह करनेवाली जो कॉपी थी, उसमें उसने यह नाम देखा होगा। इस वक़्त हड़बड़ी में उसके मुँह से यही नाम निकल गया।

दो करारे थप्पड़ खा लेने के बाद श्रीमान व्योमकेश अपने कान पर मास्टर जी का ज़बर्दस्त प्रेम अनुभव करके बिना किसी विरोध के बेंच पर खड़े हो गए। कान की जलन जैसे-जैसे कम होती गई, उसका मन फिर उस पतंग के पीछे दौड़ने लगा, और वह पतंग की डोर के लिए फिर से माँझा बनाने में व्यस्त हो गया। वह पूरा दिन व्योमकेश का डाँट खाते हुए ही गुज़रा।

शाम को जब सब घर लौट रहे थे, उस वक़्त व्योमकेश ने देखा, डॉक्टर साहब का एक बेटा

एक पतंग की दुकान से लाल रंग की बहुत बड़ी पतंग ख़रीद रहा था। यह देखकर व्योमकेश ने अपने दोस्त पाँचकौड़ी से कहा, "देख रहा हूँ पाँचू, हमें दिखा-दिखाकर पतंग ख़रीदा जा रहा है। यह तो हद हो गई। माना उसने मेरी दो पतंग काटी हैं, मगर इसके लिए इतना जोश दिखाने की क्या ज़रूरत है?"

फिर व्योमकेश ने पाँचू को माँझा तैयार करने की योजना बता दी। या सुनकर पाँचू बोला, "यह सब करके भी क्या तू उसे हरा पाएगा?" वह डॉक्टर साहब का बेटा है। न जाने कितने प्रकार के मसालों की उसे जानकारी होगी। अभी उसी दिन मैंने देखा कि उसके बड़े भाई ने किसी मसालेवाली अर्क़ जैसी कोई चीज़ उड़ेली कि उससे ख़ूब फेन बहने लगा। अगर वे लोग माँझा बनाने की ठान लें, तो दूसरा उनसे बेहतर माँझा कैसे बना लेगा?

यह सुनकर व्योमकेश के उत्साह पर पानी फिर गया। उसे यक़ीन हो गया कि डॉक्टर बाबू के बेटे को ख़ास प्रकार का माँझा बनाना आता है। अगर ऐसा न होता तो व्योमकेश से चार साल छोटा होने के बावजूद उसने इतनी आसानी से उसके पतंग की डोर कैसे काट दी? तभी व्योमकेश ने तय कर लिया कि उसके माँझे को जैसे भी हो हासिल करना ही होगा। एक बार वह माँझा मिल जाए, वह डॉक्टर साहब के बेटे को अपनी पतंग का कमाल दिखा देगा।

घर जाकर फटाफट नाश्ता करके व्योमकेश डॉक्टर साहब के बेटों से परिचय करने दौड़ा। वहाँ जाकर उसने देखा कि बरामदे के एक कोने में बैठकर वही लड़का एक डॉक्टरी खरल में न जाने कौन-सा मसाला घोंट रहा था। व्योमकेश पर नज़र पड़ते ही वह उसे फटाफट एक चौकी के नीचे छिपाकर वहाँ से चुपचाप खिसक गया। व्योमकेश ने मन-ही-मन कहा, "अब छिपाने से क्या लाभ बच्चू, तुम्हारा भेद तो मैंने जान लिया है।"

व्योमकेश ने अपनी चारों तरफ़ देखा। उसे कहीं कोई नज़र नहीं आया। उसने सोचा कि कोई दीख जाए तो उससे वह थोड़ा-सा वही मसाला माँग ले। फिर सोचा कि माँगने पर कोई उसे देगा भी या नहीं, क्या पता? ऐसी बेकार-सी चीज़ के लिए उसे किसी से माँगने की क्या ज़रूरत जो बख़ूबी सान चढ़ाई जा सकती है। यह सोचकर उसने चौकी के नीचे रखा मुट्ठी भर मसाला उठा लिया। वहाँ से भागा तो फिर अपने घर ही जाकर रुका।

घर पहुँचते ही वह माँझा बनाने में जुट गया। व्योमकेश को वह माँझा कुछ विचित्र जैसा लगा। उसमें ज़रा भी कड़क नहीं थी। शायद उसे बहुत महीन चूरे से बनाया गया था। डोर पर माँझा चढ़ाते-चढ़ाते पूरी शाम ढल गई। तभी उसके बड़े भैया ने आकर उसे डाँटा, "अब यह सब डोरी-पतंग छोड़कर पढ़ने बैठ जाओ।"

व्योमकेश को उस रात ठीक से नींद नहीं आई। अचानक उसने सपना देखा कि डॉक्टर साहब के बेटे ने मारे जलन के उसकी डोर पर पानी डालकर पूरा माँझा चौपट कर दिया है। सुबह होते ही व्योमकेश अपना माँझा देखने दौड़ा। वहाँ जाकर उसने देखा कि एक बूढ़े सज्जन उसी

बरामदे के सामने बैठकर उसके बड़े भैया के साथ हुक्का पीते हुए बात कर रहे थे। व्योमकेश के लिए मुश्किल खड़ी हो गई। इनके सामने से वह अपना माँझा कैसे लेगा? कुछ देर संकोच करने के बाद आख़िरकार वह झटपट अपनी बँधी हुई डोर खींचने लगा। उसे लपेट कर वह लौट ही रहा था कि अचानक खाँसी आ जाने से उस बूढ़े सज्जन की चिलम से थोड़ी-सी आग ज़मीन पर गिर पड़ी। उन्होंने इसे उठाने के लिए इधर-उधर देखा। पास ही में उन्हें एक काग़ज़ पड़ा नज़र आया। इसी काग़ज़ में व्योमकेश माँझे का मसाला चुराकर ले आया था। थोड़ा मसाला अभी तक उसमें लगा भी था। वह उसी काग़ज़ से आग उठाकर अपनी चिलम में रखने लगे।

सर्वनाश! उन्होंने जैसे ही उस काग़ज़ को आग से छुआ कि पूरा काग़ज़ भक्क से जल उठा। इससे उनकी उँगलियाँ जल गईं। बरामदे में भी आग फैल गई। काफ़ी हो-हल्ले, भाग दौड़ और पानी डालने के बाद ही वह आग बुझ पाई। वृद्ध सज्जन की जली हुई उँगलियों में मलहम लगाया गया। इन सबसे निपटकर बड़े भैया ने व्योमकेश का कान पकड़कर पूछा, "बेवक़ूफ़, तूने उस काग़ज़ में क्या रखा था?"

व्योमकेश रुआँसा होकर बोला, "कुछ भी तो नहीं था। पतंग की डोर में लगाने के लिए थोड़ा-सा माँझा रखा था।"

बड़े भैया को यक़ीन नहीं हुआ। उन्होंने डाँटा, "झूठ बोलते हो?" ग़ुस्से में उन्होंने व्योमकेश को दो-चार थप्पड़ भी जड़ दिए। बेचारे व्योमकेश को इस अपमान के बावजूद इतनी राहत तो मिली कि चलो जो भी हुआ, कम-से-कम उसकी माँझेवाली डोर तो बच गई। भाग्य से उसने डोर खोल ली थी, नहीं तो डोर जल जाती और उसकी मेहनत पर पानी फिर जाता।

शाम को स्कूल से घर लौटते ही व्योमकेश अपनी पतंग और लटाई लेकर छत पर चला गया। मन-ही-मन उसने कहा, "अगर आज डॉक्टर साहब का बेटा आ जाए तो उसे दिखा दूँगा, पतंग की पेंच कैसे लड़ाई जाती है।"

तभी पाँचकौड़ी ने आकर उससे कहा, "तूने कुछ सुना?"

व्योमकेश ने कहा, "नहीं तो। क्या बात है?"

पाँचू बोला, "डॉक्टर के बेटे ने ख़ुद अपने हाथों से दियासलाई बनाई है। लाल-नीली लौ देनेवाली तीलियाँ भी बनाई हैं।"

व्योमकेश को सन्देह हुआ। फिर भी उसने कहा, "अरे, उसने दियासलाई नहीं, माँझा बनाया है।"

यह सुनकर पाँचू ने खीझते हुए कहा, "मैं अपनी आँखों से देखकर आ रहा हूँ कि वह लाल-नीली लौ वाली सलाइयाँ जला रहा था, और तू अपने माँझे की हाँके जा रहा है। एकदम गोबर गणेश है तू!"

अब व्योमकेश ने अपने माँझे को ग़ौर से देखा। वाक़ई उसमें दियासलाई का मसाला लगा

हुआ था। वह आँखें फाड़कर उसे ही देखता रहा, तभी डॉक्टर साहब के मकान की छत से एक लाल रंग की पतंग उड़कर जैसे उसका मज़ाक़ उड़ाने लगी।

व्योमकेश का चेहरा लटक गया। वह उदास होकर अपने बिस्तर पर जाकर लेट गया। पाँचू ने पूछा, "अरे, तुझे अचानक क्या हो गया?"

व्योमकेश बोला, "तू घर जा। आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

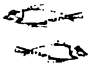

डाकू का भ्रम

हारान बाबू शाम के समय स्टेशन से घर लौट रहे थे। उनका घर स्टेशन से आधा मील दूर था। शाम क़रीब-क़रीब ढल चुकी थी। हारान बाबू की चाल तेज़ हो गई। उनके एक हाथ में बैग था और दूसरे हाथ में छाता।

चलते हुए अचानक उन्हें लगा कि कोई उनके पीछे आ रहा है। उन्होंने तिरछी नज़रों से देखा, वाक़ई कोई और भी उन्हीं की तरह तेज़ क़दमों से उनके पीछे चला आ रहा था। हारन बाबू को लगा, जैसे वह उनका पीछा कर रहा है। हारान बाबू घबरा गए कि कहीं वह व्यक्ति चोर-डाकू तो नहीं है। इस सुनसान मैदान को पार करते हुए उन्हें अकेला पाकर कहीं वह उन्हें दो-चार लाठी ही न जमा दे। हारान बाबू की बाँस जैसी दुबली-पतली टाँगे काँपने लगीं। जब उन्हें कुछ नहीं सूझा तो वह किसी तरह लड़खड़ाते हुए दौड़ने लगे। उन्हें दौड़ते देखकर उनके पीछेवाला आदमी भी दौड़ने लगा।

यह देखकर हारान बाबू ने सोचा सुनसान मैदान को इस तरह अकेले पार करना ठीक नहीं, बल्कि बड़ी सड़क से वैद्य टोला होकर, घूमकर जाना ही ठीक है। इस तरह कुछ ज़्यादा चलना ज़रूर पड़ेगा पर जान तो बचेगी। वह झट से दाहिनी तरफ़ की एक गली में घुसकर बख़्शी बाबू की बाड़ लाँघकर दौड़ते हुए मुख्य सड़क पर जा पहुँचे।

बाप रे! उनके पीछेवाला आदमी वाक़ई बदमाश था। वह भी उन्हीं की तरह बाड़ लाँघकर उल्टे रास्ते से मुख्य सड़क पर आ पहुँचा।

हारान बाबू ने अपने छाते को सख़्ती से पकड़ लिया। उन्होंने सोचा, अब भाग्य में जो लिखा है, देखा जाएगा। उस बदमाश के नज़दीक आते ही इसी छाते से वह उसकी पिटाई कर देंगे। हारान बाबू को याद आया कि वह बचपन में व्यायाम किया करते थे। उन्होंने एक बार अपनी बाँहों की मांसपेशियाँ फुलाकर देख लीं कि वे अभी सख़्त होती हैं या नहीं।

अब वह काली बाड़ी के पास पहुँच चुके थे। मन्दिर के नज़दीक पहुँचते ही हारान बाबू अचानक वहाँ उगी झाड़ियों के बीच से होकर जितना तेज़ दौड़ सकते थे, दौड़ने लगे। पैरों की आवाज़ क़रीब आते सुनकर उन्हें महसूस हुआ कि वह आदमी उनसे भी तेज़ दौड़ रहा था। अब तो उन्हें उसके डाकू होने के बारे में कोई सन्देह नहीं रहा। हारान बाबू का दिल बड़ी तेज़ी से

धड़कने लगा। उनके माथे पर पसीने की बूँदें उभर आईं। अचानक उन्हें सामनेवाले घाट पर कुछ लोग बैठे बातें करते हुए नज़र आए।

उन्हें देखकर हारान बाबू के मन में साहस लौट आया। उनके कुछ और पास पहुँचकर अपने को और सुरक्षित समझकर उन्होंने पलटकर अपना छाता तानते हुए सीना फुलाकर ज़ोर से कहा, "अब मेरे पास आ, मैं तुझसे निपटता हूँ। क्या मुझे तेरी हरकतों का पता नहीं? अपना भला समझता है तो...।"

मगर जब वह आदमी पास आया तो उसे देखकर उनका जोश ठण्डा पड़ गया। वह भी हारान बाबू जैसा ही दुबला-पतला निरीह आदमी था। वह डाकू तो लगता ही नहीं था।

हारान बाबू ने अपनी आवाज़ धीमी करके उसे डाँटा, "ज़रा बता तो, तू मेरा पीछा क्यों कर रहा है?"

हारान बाबू को नाराज़ देखकर वह आदमी घबरा गया था। उसने किसी तरह अपना गला झाड़कर कहा, "स्टेशन के बाबू ने ही मुझसे कहा था कि आप बलराम बाबू के घर की बग़ल में रहते हैं। मुझे वहीं जाना है। मैंने सोचा कि मैं आपके पीछे-पीछे चलता रहूँ तो बलराम बाबू के यहाँ पहुँच जाऊँगा।...मगर बाबूजी, एक बात मेरी समझ में नहीं आई। आप क्या रोज़ इसी तरह उल्टे-सीधे रास्ते से कूदते-फाँदते-दौड़ते हुए अपने घर जाते हैं?"

हारान बाबू की समझ में नहीं आया कि वह क्या कहें! सच बात कहने में उन्हें शर्म आ रही थी। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। उसे साथ लेकर वह घर की ओर चल पड़े।

राजा की बीमारी

एक था राजा। वह बेहद बीमार था। डॉक्टर, वैद्य, हकीम जाने कितने आए, पर सब निराश होकर लौट गए। न वे राजा की बीमारी पकड़ पा रहे थे, न इलाज कर पा रहे थे।

इलाज करते भी कैसे! बीमारी तो थी ही नहीं। बस राजा को लगता कि वे बेहद बीमार हैं। मगर वह बीमारी है कहाँ, इसे कोई समझ नहीं पाता था। राजा ने न जाने कितनी तरह की दवाओं का सेवन किया, मगर उनकी हालत में सुधार नहीं हुआ। उनके सिर पर बर्फ़ रखी गई। पेट सेंका गया। पर बीमारी वैसी की वैसी ही रही।

अब राजा को ग़ुस्सा आ गया। उन्होंने कहा, "भगा दो, इन नालायक़ों को। इनके पोथी-पत्रों को छीनकर उनमें आग लगा दो।"

इलाज करनेवाले मुँह लटकाकर लौट आए। लोगों ने डर के मारे राजा के महल की ओर जाना छोड़ दिया। राजमहल के लोग चिन्ता में पड़ गए कि राजा कहीं बिना दवा के ही न मर जाएँ।

ऐसे समय न जाने कहाँ से एक संन्यासी का आगमन हुआ। उन्होंने कहा, "राजा को स्वस्थ करने का उपाय मैं जानता हूँ। लेकिन वह बहुत कठिन है। क्या तुम लोग वैसा कर पाओगे?"

मन्त्री, कोतवाल, सेनापति, राजा के निकट के सभी लोगों ने कहा, "क्यों नहीं कर पाएँगे? अगर इसमें जान भी जाए तो मंजूर है।"

यह सुनकर संन्यासी ने कहा, "पहले एक ऐसे व्यक्ति की तलाश करो, जिसके मन में कोई चिन्ता न हो, जो हर हाल में ख़ुश रहता हो।"

लोगों ने पूछा, "उसके बाद?"

संन्यासी बोले, "उसके बाद उस व्यक्ति के कपड़े अगर एक दिन के लिए राजा पहन लें और उस व्यक्ति के गद्दे पर रात भर सो लें, तब देखना उनकी बीमारी दूर हो जाएगी। वह एकदम ठीक हो जाएँगे।"

यह सुनकर सभी ने कहा, "यह तो बड़ी अच्छी बात है।"

फटाफट यह ख़बर राजा तक पहुँच गई। उन्होंने कहा, "अरे इतना आसान उपाय रहते ये सारे लोग अब तक क्या कर रहे थे? इतनी-सी बात किसी के दिमाग़ में क्यों नहीं आई? जाओ, उस हँसनेवाले आदमी को तुरन्त ढूँढ़कर उसका कुर्ता और गद्दा ले आओ।"

लोग उस आदमी की तलाश में निकल पड़े। पूरे राज्य में 'ढूँढ़ो–ढूँढ़ो' का शोर मच गया। लेकिन उस आदमी का पता नहीं चला।

हर आदमी निराश लौटकर कहता, "ऐसा आदमी तो कहीं मिला ही नहीं, जिसे कोई दुःख नहीं है, चिन्ता नहीं है। जो हमेशा हँसता रहता है, ख़ुश रहता है, ऐसा आदमी तो कहीं मिला ही नहीं।"

तलाश में निकले सभी लोग लौटकर यही कहते।

मन्त्री नाराज़ होकर बोले, "ये किसी काम लायक़ नहीं हैं। इन मूर्खों को पता नहीं कि तलाश कैसे की जाती है?" अब मन्त्री ख़ुद ही कमर कस के निकल पड़े।

बाज़ार पहुँचकर उन्होंने देखा, एक बड़े-से आँगन में काफ़ी भीड़ थी। एक बूढ़ा सेठ बड़ी ख़ुशी से लोगों को चावल, दाल और पैसा दान कर रहा था।

मन्त्री ने सोचा, वाह यह आदमी तो बड़ा ख़ुश नज़र आ रहा है। इसके पास लगता है, रुपये-पैसे भी काफ़ी हैं। तब फिर इसे कोई कष्ट नहीं होगा, न कोई चिन्ता। इसी का एक कुर्ता और गद्दा माँग लिया जाए।

तभी उसी समय एक भिखारी सेठ से भीख लेकर बिना उन्हें प्रणाम किए वहाँ से जाने लगा। बस, सेठ को गुस्सा आ गया। उसने उसे थप्पड़ मार दिया। फिर उसे दी गई दान सामग्री उससे छीनकर उसे जूते से पीटकर भगा दिया। यह तमाशा देखकर मन्त्री मुँह बनाकर आगे बढ़ गए।

फिर नदी किनारे एक जगह उन्होंने देखा कि एक आदमी मज़ाक़िया गाने गाकर लोगों को हँसा रहा है। कोई आदमी ऐसी अदाओं से हँसा भी सकता है, मन्त्री को यह पता ही नहीं था। वे भी उसके हाव-भाव से ठठाकर हँसने लगे। उन्होंने सोचा, ऐसे हँसोड़ आदमी के रहते हमारे लोग ख़ाली हाथ क्यों लौट आए? उन्होंने अपने क़रीब खड़े एक व्यक्ति से पूछा, "यह आदमी कौन है?"

उसने कहा, "यह अपना गोबरा नशेड़ी है। अभी आप इसे देख रहे हैं कि यह कितना ख़ुशमिज़ाज है मगर शाम को शराब पीने के बाद इसका हुल्लड़ और उत्पात शुरू हो जाता है। इसकी हरकतों से मुहल्लेवालों का जीना मुहाल हो गया है।"

यह सुनकर मन्त्री बहुत निराश हुए। वे फिर से हर तरह से योग्य व्यक्ति की खोज में चल पड़े। दिनभर की तलाश के बाद मन्त्री थककर घर लौट आए। वह प्रतिदिन उस व्यक्ति को ढूँढ़ने निकलते और शाम को निराश होकर घर लौट आते। वे लगभग निराश हो चुके थे।

अचानक अगले दिन उन्होंने एक पेड़ के नीचे एक बूढ़े को ठहाके लगाते देखा। उस आदमी के बाल बढ़ गए थे। चेहरे की दाढ़ी भी बढ़ी हुई थी। उसका पूरा शरीर सूखकर रस्सी की तरह ऐंठ गया था।

मन्त्री ने पूछा, "तुम इस तरह हँस क्यों रहे हो?"

उसने कहा, "क्यों नहीं हँसूँ? यह दुनिया लगातार घूम रही है, पेड़ के पत्ते झड़ते जा रहे हैं, मैदान घास से भरते जा रहे हैं, धूप निकल रही है, पानी भी बरसने लगता है, चिड़िया आकर पेड़ों पर बसेरा लेती हैं, फिर सब उड़ भी जाती हैं। यह सब आँखों के सामने दीखता रहता है, इसलिए हँसी भी आ जाती है।"

मन्त्री ने कहा, "ख़ैर, यह सब तो समझ गया, लेकिन सिर्फ़ इस तरह बैठकर हँसते रहने से तो काम नहीं चलता। तुम क्या कोई काम-धाम नहीं करते?"

फ़क़ीर बोला, "क्यों नहीं करता? सुबह नदी की ओर जाता हूँ, वहाँ नहा-धोकर लोगों को आते-जाते देखता हूँ, उनकी बातें सुनता हूँ, यह सब तमाशा देखकर फिर अपने इस पेड़ के नीचे आकर बैठ जाता हूँ। इसके बाद जिस दिन खाना मिल जाता है, खा लेता हूँ। जिस दिन नहीं मिलता, भूखा रह जाता हूँ। जब घूमने की इच्छा करती है, घूमने चल पड़ता हूँ, जब सोने की इच्छा होती है, सो जाता हूँ। कोई चिन्ता-भावना, उठा पटक, किसी से कोई मतलब नहीं। बड़ा मज़ा है।"

मन्त्री सिर खुजलाते हुए बोले, "जिस दिन खाने को नहीं मिलता, उस दिन क्या करते हो?"

फ़क़ीर बोला, "उस दिन तो कोई झंझट ही नहीं। चुपचाप बैठा-बैठा दुनिया का तमाशा देखता रहता हूँ। बल्कि जिस दिन खाने को मिल जाता है उस दिन ज़्यादा झमेला करना पड़ता है। भात सानो, उसका कौर बनाओ, उसे मुँह में डालो, चबाओ, निगलो...इसके बाद पानी पियो, कुल्ला करो, हाथ-मुँह पोंछो, कितना कुछ करना पड़ता है।"

मन्त्री ने देखा कि इतने दिनों बाद जाकर अब सही व्यक्ति मिला है। उन्होंने कहा, "अपने पहनने का एक आध कपड़ा दे सकते हो? इसके लिए तुम जितने पैसे चाहो मैं दे सकता हूँ।"

यह सुनकर वह व्यक्ति बड़े ज़ोर से हँसा। बोला, "कपड़े?...अभी उस दिन एक आदमी ने मुझे एक चादर दी थी, उसे एक भिखारी को दे दिया। कपड़े-वपड़े के चक्कर में मैं कभी पड़ता नहीं।"

मन्त्री ने कहा, "तुमने तो मुझे मुश्किल में डाल दिया। किसी तरह एक आदमी मिला भी तो उसके बदन पर कपड़ा नहीं। ख़ैर, कोई बात नहीं। तुम अपना गद्दा ही मुझे दे दो। इसके लिए जितने पैसे तुम चाहो मुझसे ले लो।"

फकीर हँसते-हँसते लोटपोट हो गया। काफ़ी देर तक हँसने के बाद वह बोला, "चालीस साल से मैंने बिस्तर के बारे में जाना ही नहीं, और तुम मुझसे गद्दा माँगते हो?"

मन्त्री बड़े आश्चर्य से बोले, "तुम भी ख़ूब हो।" न कपड़ा पहनते हो, न रजाई, कम्बल, बिस्तर रखते हो। तुम बीमार वग़ैरह नहीं पड़ते?"

फ़क़ीर बोला, "बीमारी क्या चीज़ होती है? जो लोग बीमारी के बारे में सोचते रहते हैं, वे ही बीमार पड़ते हैं। बीमारी उन्हें ही दबोचती है।" यह कहकर उसने पेड़ से टेक लगाई और पैर फैलाकर फिर से हँसने लगा।

मन्त्री हताश होकर वापस लौट आए। उनके आने की ख़बर राजा तक पहुँची। राजा ने मन्त्री को बुला भेजा। मन्त्री ने पास जाकर सारी कहानी सुना दी। सब सुनकर राजा ने मन्त्री से कहा, "ठीक है, अब आप घर जाएँ।"

राजमहल में लोग फिर से चिन्ता में डूब गए। अब क्या किया जाए? इलाज से कोई फ़ायदा हुआ नहीं। बड़ी मुश्किल से जो एक उपाय हाथ लगा, वह भी निकल गया।

सभी एक दूसरे का मुँह ताकने लगे, फिर गहरी साँस लेकर बोले, "अब राजा को बचाने की कोई सूरत नज़र नहीं आती।"

उधर राजा भी बैठे-बैठे सोच रहे थे, "मैं राजा हूँ। कितने सुख से रहता हूँ। अच्छा-से-अच्छा खाना खाता हूँ। किसी चीज़ की कमी नहीं। लोग हर समय मेरा ख़याल रखते हैं। इस पर भी मुझे बीमारी लग गई। और इस फ़क़ीर को देखो, जिसका न कोई आगे है न पीछे, जिसके बदन पर कपड़े नहीं, सोने के लिए बिस्तर नहीं, सिर्फ़ पेड़ के नीचे पड़ा रहता है, जो मिल जाता है, खा लेता है—ऐसा आदमी कहता है कि भला बीमारी क्या चीज़ है? वह फ़क़ीर होकर बीमारी की परवाह नहीं करता और मैं राजा होकर बीमारी से डरता हूँ। छिः!"

दूसरे ही दिन राजा ने सुबह उठने के बाद अपने ख़ास दरबारियों को बुलाकर कहा, "तुम सब के सब बेवक़ूफ़ और निकम्मे हो। तुम लोगों से कुछ करते नहीं बना। लेकिन देखो, अपनी बीमारी मैंने ख़ुद ही ठीक कर ली है। आज से मैं फिर से पहले की तरह दरबार में बैठूँगा, और जो ज़रा भी बेअदबी करेगा, उसकी गर्दन उड़ा दूँगा।"

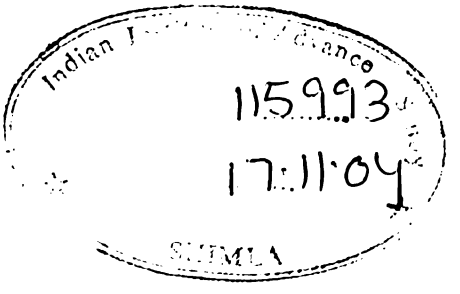

साहित्य अकादेमी

बाल साहित्य प्रकाशन

अंतरिक्ष में विस्फोट	जयंत विष्णु नारलीकर	30 रुपये
अचरजग्रह की दन्तकथा	ताजिमा शिन्जी	40 रुपये
कबूतरों की उड़ान	रस्किन बांड	30 रुपये
किशोर कहानियाँ	विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय	40 रुपये
गोट्या	ना.धो. ताम्हनकर	25 रुपये
ग्रिम बन्धुओं की कहानियाँ (दो भागों में)	जैकोब लुडविग कार्ल ग्रिम	150 रुपये
	तथा विलहेम कार्ल ग्रिम	(प्रति भाग)
गोसाईं बागान का भूत	शीर्षेन्दु मुखोपाध्याय	30 रुपये
चन्द्र पहाड़	अमर गोस्वामी	30 रुपये
जंगल टापू	जसबीर भुल्लर	40 रुपये
जंगल की एक रात	लीलावती भागवत	25 रुपये
निर्बुद्धि का राज काज (लोककथाएँ)	गोपाल दास	30 रुपये
प्रेमचन्द : चुनिन्दा कहानियाँ	प्रेमचन्द	30 रुपये
		(प्रति भाग)
बच्चों ने दबोचा चोर (नाटक)	गंगाधर गाडगील	25 रुपये
बिल्ली हाउस बोट पर (कहानी)	अनिता देसाई	25 रुपये
बुलबुल की किताब	उपेन्द्रकिशोर राय चौधुरी	35 रुपये
मोरोंवाला बाग़	अनिता देसाई	30 रुपये
रवीन्द्रनाथ का बाल साहित्य (दो भागों में)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	30 रुपये
		(प्रति भाग)
लासारो (उपन्यास)	अज्ञात	30 रुपये
लघुकथा संग्रह (दो भागों में)	चयन एवं सम्पादन : जयमन्त मिश्र	40 रुपये
वनदेवी (विज्ञान कथा)	'कल्वी' गोपालकृष्णन	25 रुपये
सुनो कहानी	रूपान्तरकार : विष्णु प्रभाकर	25 रुपये
हैंस एण्डरसन की कहानियाँ (दो भागों में)	हिन्दी अनुवाद : हरिकृष्ण	
जापान की कथाएँ	साईजी माकिनो	

Library IIAS, Shimla
H 028.5 R 211 G
00115993

ISBN : 81-260-1415-6

मूल्य : तीस रुपये